प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन,
गोरखपुर



प्रथम संस्करण, जुलाई १९६१

मूल्य
६·५०

रेखाचित्र
श्री शिवकुमार गोयल

मुद्रक
अग्रवाल प्रेस,
इलाहाबाद

अपने

प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग

गोरखपुर विश्वविद्यालय

के

स्नेही सहयोगियों और मित्रों

को

# विषय-सूची

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

# चित्र सूची

# मानचित्र-सूची



# तालिका-सूची

# दो शब्द

भारत मे प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन अभी आरम्भ ही हुआ है। इस कार्य में सबसे बड़ी बाधा भारतीय भाषाओं में इस विषय पर पुस्तकों का अभाव है। यहाँ तक कि भारतीय प्रागैतिहासिक युग पर भी अधिकांश शोध-ग्रन्थ केवल आँग्ल भाषा मे ही उपलब्ध है। इस कठिनाई को दूर करने में कुछ सहायता देने की भावना से प्रेरित होकर मैंने इस पुस्तक को प्रस्तुत करने का साहस किया है। इसमें, जहाँ तक सम्भव हो सका है, नवीनतम गवेषणाओं से प्रकाश में आये तथ्यों को समाविष्ट कर दिया गया है।

इस पुस्तक के प्रणयन में मुझे अनेक महानुभावों से प्रेरणा एवं सहयोग मिला है। सर्वप्रथम मैं डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय का अभिनन्दन करता हूँ, जो इस पुस्तक के लिखने मे ही नही वरन् मेरे सम्पूर्ण भाव-जगत् के लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। उन्होंने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि देखने और भूमिका लिखने की कृपा की है, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग के मेरे सहयोगियों और बन्धुओं ने पुस्तक की पाण्डुलिपि देखकर समय-समय पर बहुमूल्य सुझाव एवं परामर्श दिये, इसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। श्री विजयबहादुर राव ने अनुक्रमणिका तैयार करने में सहायता दी, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। विश्वविद्यालय-प्रकाशन के अधिकारी श्री पुरुषोत्तमदास मोदी ने इसका प्रकाशन बड़ी शीघ्रता और प्रसन्नता से किया, एतदर्थ मैं उनको धन्यवाद देता हूँ।

पुस्तक में दिया गया अल्तमीरा गुफा से प्राप्त बाइसन (Bison) का चित्र अमेरिकन म्यूजियम ऑव नेचुरल हिस्टरी के सौजन्य से उपलब्ध हो सका है, इसके लिए मैं उक्त संस्था का ऋणी हूँ। रेखाचित्र और मानचित्र मेरे अनुज शिवकुमार ने एशलेमोन्टेगू की 'मेन-हिज फर्स्ट मिलियन ईयर्स', केनिथ पी० ओकले की 'मैन द टूल मेकर', एम० सी० बर्किट की 'द ओल्ड स्टोन एज', ह्वीलर की 'द अर्ली इण्डिया एण्ड पाकिस्तान', गॉर्डन चाइल्ड की 'न्यू लाइट ऑन द मोस्ट एन्शियेंट ईस्ट' तथा अन्य अनेक पाश्चात्य पुरातत्त्ववेत्ताओं के ग्रन्थों में दिये हुए चित्रों और मानचित्रों की सहायता से बनाये है। मैं उक्त विद्वानो के प्रति असीम आभार प्रकट करता हूँ। प्रिय शिवकुमार ने चित्र और मानचित्र बनाने में ही नहीं वरन् पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने में भी लगन के साथ कार्य किया, इसके लिए वह प्रशंसा के अधिकारी है।

गोरखपुर विश्वविद्यालय —श्रीराम गोयल

२५ मार्च १६६१.

# स्वर्णयुग

एक समय यह धारणा प्रायः प्रचलित थी कि ईश्वर ने नर, वानर आदि जातियों की समकालिक किन्तु पृथक् पृथक् विकसित रूपोंमें सृष्टि की। मनुष्य की दैहिक और मानसिक दशा आदिकाल में भी वैसी ही थी जैसी आज। इतिहास केवल मनुष्य के संगठन, कर्म और संस्कारों में भेद करता रहा है। इस दृष्टि के अनुसार मानव-स्वभाव के अपरिवर्तित रहते हुए उसकी सामाजिक परम्पराओं का परिवर्तन ही इतिहास है। अन्य अशेष प्राणि जातियों के ऊपर मनुष्य की श्रेष्ठता और प्रभुता भी इस धारणा में निर्विवाद है। ऐतरेयोपनिषद् में पुरुष को लोक-पाल कहा गया है। यह भी प्रायः माना जाता रहा है कि मनुष्य का आदिकाल एक स्वर्णयुग था, जबकि मनुष्यों और देवताओं में अन्तर कम था। इतिहास की गति ने मनुष्य को क्रमशः कलुषित कर दिया। इस दृष्टि से मानव इतिहास को नैतिक पतन और सुख के ह्रास की कथा कहा जा सकता है। अपने देश में प्रचलित चार युगों की धारणा इस प्रसंग में उदाहरणीय है। महाभारत में कहा गया है कि कृतयुग में न राज्य था न राजा, न दण्ड न दाण्डिक। धर्म से ही प्रजा में परस्पर रक्षा होती थी। कालान्तर में धर्म के क्षीण होने पर समाज के दण्डमूलक पुनः संघटन की आवश्यकता हुई। इसी प्रकार की कल्पना अन्य अनेक जातियों में उपलब्ध होती है। आधुनिक विचारकों में लॉक एवं रूसो के द्वारा 'प्राकृत स्थिति' की कल्पना भी अंशतः सदृश है।

सृष्टि और इतिहास सम्बन्धी इन प्राचीन प्रचलित धारणाओं को आज अयथार्थ मानना अनिवार्य है। यद्यपि इन कल्पनाओं में प्रकारान्तर से सत्य की छाया सर्वथा दुरालक्ष्य नहीं है, तथापि उस प्रकार का प्रतीकात्मक अर्थ इतिहास के क्षेत्र का अति-क्रमण करता है। वर्तमान ऐतिहासिक धारणा पिछली शताब्दी में आविष्कृत विकास-वाद पर आश्रित है। जीवशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य और पशुओं के बीच कोई अपूरणीय खाई नहीं है बल्कि विभिन्न जीवयोनियों में एक निश्चित विकास का क्रम देखा जा सकता है, जिसके एक ओर उथले जल के कथंचित् उद्‌भूत प्राणी हैं और दूसरी ओर मनुष्य। एक ही प्राण की धारा नाना पशुओं और पौधों में प्रवाहित और विकसित हुई है। काल के सुदीर्घ आयाम में जीव ने नाना शारीरिक संस्थानों के साथ विभिन्न प्राकृतिक परिस्थितियों में विभिन्न प्रयोग किये। अन्त में तृतीयक युग में वानर परिवार के परिष्कार के द्वारा मनुष्य का उद्‌भव हुआ। जबड़ों का घटना तथा मुखाकृति में परिवर्तन, अंगुलियों और विशेषतः अंगूठे में

दक्षता का उन्मेप, जिह्वा और आँखों में नये स्वर और एकाग्रता, इन नवोदित गुणों ने मनुष्य को पिछले प्राणियो से पृथक् किया। हाथो का कौशल और वाणी का प्रयोग मनुष्य की सर्वोपरि विशेषताए है जिनके द्वारा वह भौतिक संस्कृति का निर्माण तथा सामाजिक परम्परा की प्रतिष्ठा कर सका। अभाग्यवश वाणी पर आश्रित मनुष्य का विशाल मानस-साम्राज्य लिपि आदि स्थिर प्रतीको मे अभिव्यक्त हुए बिना जानकारी मे नही आता। साक्षरता ही प्रागितिहास और इतिहास के बीच विभाजक रेखा है। अतएव प्रागैतिहासिक क्षेत्र में मनुष्य का वाङ्मय और मनोमय जगत् अधिकाशतः अज्ञात रह जाता है, यद्यपि लिपि के अतिरिक्त अन्य प्रकार के कुछ प्रतीको से उसका किंचित् आभास होता है।

प्रागैतिहासिक मनुष्य का परिचय मुख्यत. उसके हाथो की अवशिष्ट कृतियों से ही हो पाता है। इस प्रागैतिहासिक मानव को 'निर्माता मनुष्य' (Homo Faber) कहना निश्चय ही न्यायसंगत है। विभिन्न भूभागों मे उपलब्ध नाना प्रकार के प्रागैतिहासिक प्रास्तरिक उपकरणो का विवरण और चित्रण आप इस पुस्तक में पायेंगे। उनके आकार से उनके उपयोग का कुछ अनुमान किया जा सकता है। किन्तु वस्तुत: प्रागैतिहासिक समाज और संस्कृति का ज्ञान पुरातत्त्व से लेशमात्र ही हो सकता है। पुरातत्त्व को इस दिशा में नृतत्त्व-विद्या की सामग्री से पूरित करना चाहिए।

नृतत्त्व-वेत्ताओ ने अविकसित भूभागो के आदिम निवासियों का सामाजिक वृत्तान्त सूक्ष्म पर्यवेक्षण के साथ प्रस्तुत किया है। उनके विविध विवरण के आधार पर मनुष्य के प्राचीन जीवन और समाज की कल्पना नाना प्रकार से की गई है। तस्मानिया के पुराने निवासी पूर्व-पाषाणयुगीन संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते थे। अमरीका के मूल निवासी कदाचित् उत्तर-पाषाण युग की संस्कृति में चिरकाल तक रहे। भारतीय आदिम जातियाँ सभ्यता से अतिदूर होने के कारण अपने मूल रूप मे सुरक्षित नही हैं। वस्तुतः आधुनिक समय तक अवशिष्ट आदिम समाजो मे कितना अंश अविकल तथा आदिम है, इसका निर्णय बहुधा दुष्कर समझना चाहिए। इतना निश्चित है कि बहुतेरी आदिम जातियो मे वैज्ञानिक और ताक्षणिक ज्ञान न्यूनाधिक रूप से सदृश स्तर का होने पर भी उनके सामाजिक जीवन मे बहुत वैशिष्ट्य प्रकट होता है; अर्थात् एक ही पाषाण युग में विद्यमान नाना जातिया भाषा संगठन, रीति-रिवाज और धर्म की दृष्टि से अत्यन्त विभिन्न थीं। सांस्कृतिक विकास का एक परिणाम इन विभेदों को कम करना हुआ है। प्राय. यह धारणा प्रचलित है कि आदिम समाज में जीवन सीधा-साधा, अजटिल, अग्रन्थिल था। किन्तु यह निरपवाद सत्य नही प्रतीत होता। रिश्तेदारी और बिरादरी को ही

लीजिए। अनेक आदिम समाजों में इनका बहुत जटिल व्यवस्थापन देखा जाता है। धार्मिक विचारो और कर्मकाण्ड मे भी अत्यन्त वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। भौतिक और आर्थिक दृष्टि से उसके सरल और अविकसित होते हुए भी प्राचीन समाज में एक प्रकार की रूढ़ियां और जटिलताएँ निश्चय से थी। इस कारण इस प्राचीन युग का पुरातत्त्वीय चित्रण जिस प्रकार के व्यापक सादृश्य की धारणा उपस्थित करता है उसे अंशत. भ्रामक समझना चाहिए।

प्राचीनकाल में धर्म के विकास पर नाना मत प्रकट किए गये हैं। धर्म की उत्पत्ति प्राकृतिक मानने पर उसका इतिहास भ्रान्ति का, अथवा दर्शन, विज्ञान और नीति के अविभक्त पूर्व रूप का इतिहास हो जाता है। यह सही है कि प्राचीन समय में धर्म मे नाना बौद्धिक और व्यावहारिक तत्त्व एकत्र संगृहीत थे जिनमे से अनेक उत्तरकाल में स्वतन्त्र रूप से विकसित होकर, विज्ञान, दर्शन, सामाजिक नीति, कानून आदि के रूप मे परिणत हुए है। किन्तु धर्म का मर्मभूत तत्त्व इन सबसे सम्बद्ध होते हुए भी विलक्षण है। धर्म अतिप्राकृतिक ( Supernatural ) जीवन का अनुसंधान है। प्राकृतिक जीवन निश्चित सीमाओं में बंधा है। मनुष्य अमरता का प्रार्थी है और असीम, अपरतन्त्र जीवन में ही उसे वास्तविक सुख प्राप्त हो सकता है। यह मनुष्य का स्वभावगत अनिवार्य लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति लौकिक, प्राकृतिक उपायों से संभव नहीं है। प्रकृति के आवरण के पीछे एक शाश्वत चेतन तत्त्व है जिसकी कृपा मनुष्य को वास्तविक लक्ष्य तक ले जा सकती है। यही कृपा विशेष अधिकारी महापुरुषों के निर्मल मनोदर्पण मे धार्मिक स्फूर्ति का कारण बनती है। यही दिव्य प्रेरणा, इल्हाम, श्रुति अथवा सम्बोधि का मूल उद्गम है। यही से धर्मचक्र का प्रवर्तन होता है।

मनुष्य जीवन एक अनिवार्य द्वैत में ग्रस्त है। तम और प्रकाश के समान उसमें सत्य और मिथ्या के सम्मिश्रण से अनुभव का इन्द्रधनुष विस्तारित हुआ है। इसी-लिए पारमार्थिक स्फूर्ति और प्रेरणा भी मनुष्य के इतिहास में कही अपने विशुद्ध रूप में उपलब्ध नही होती। अलौकिक ज्ञान और अनुभूति की क्षीण ज्योति प्राप्त करने पर मनुष्य बहुधा उससे लौकिक भोग सम्पादित करना चाहता है एवं धर्म की मान्यता होने पर दूसरों की श्रद्धा का दुरुपयोग धर्माधिकारियो को प्रलोभित करता है। धर्म प्राय: मिथ्याडम्बर, अन्ध विश्वास, स्वार्थ पोषण एवं प्रवंचन का सहायक बन उठता है। थोड़ी सी सच्ची लगन यदि बहुत से झूठ में लुप्त भी हो जाय तो क्या अचरज। यही कारण है कि आधुनिक काल मे सत्य के प्रति वैज्ञानिक निष्ठा तथा मनुष्य के प्रति विश्वजनीन सहानुभूति के जागरण से अनेक विचारकों ने धर्म के चिरप्रचलित अधिकांश रूप को देखकर तीव्र उद्वेग का अनुभव किया

तथा उसके इतिहास को एक प्राकृतिक तथा स्वार्थ प्रधान संस्था का इतिहास माना। वस्तुत. मनुष्य के स्वगत दोषों से अपविद्ध होते हुए भी धर्म का मूल मूलत. तत्त्व संलग्न है। वही एक सुनहरी डोरी है जो अन्ततः मनुष्य को अपने लक्ष्य तक ले जा सकती है। फादर श्मित ने विस्तृत अन्वेषण के बाद यह प्रदर्शित किया कि प्राचीनतम काल में सभी मनुष्य सीधा-साधा पारिवारिक जीवन व्यतीत करते हुए एक ईश्वर में विश्वास करते थे। पीछे आर्थिक जटिलताओं के आविर्भाव के कारण तथा विशेषतः उन्नत आखेट के युग में सम्पत्तिगत वैषम्य एवं कबीलों के और उनके नेताओं के उदय के साथ नाना और नाना स्तरीय देवताओं की कल्पना का विकास प्रोत्साहित हुआ। अल्तमिरा की गुफा में चित्रित बाइसन (Bison) इस युग का मूर्त प्रतीक है। कभी उसके जीवन्त आलेख्य के सहारे कोई पुरोहित समस्त बाइसन (Bison) जाति के वशीकरण का प्रयास करते रहे होंगे। तब से अधिकांश मनुष्य जाति किसी न किसी रूप में ऐसे ही पुरोहितों का अनुसरण करती रही है जो अपनी ज्ञानशक्ति अथवा विज्ञान शक्ति के सहारे बाह्य प्रकृति की विजय में, अधिकाधिक सफलता प्राप्त करते हैं। पर वास्तव में मनुष्य को अपनी आन्तरिक प्रकृति को जीतना है। वही शाश्वत शान्ति का मार्ग है और वही धर्म का मार्ग।

प्रागितिहास इतिहास की कतिपय सहस्राब्दियों को एक सही परिप्रेक्ष्य में रख देता है। मनुष्य की सभ्यताओं के मूल में उसकी शतधा भिन्न प्रकृति है जो केवल आर्थिक एवं वैज्ञानिक विकास से आदर्श नहीं बन जाती। प्रागैतिहासिक संस्कृतियों में अनेकविध जीवनचर्याएं और उनके उपयुक्त संगठन निर्मित हुए थे। उन सब में ऐहिक सुख की मात्रा सभ्य समाजों की तुलना में हेय थी, यह कह सकना पर्याप्त साहस की अपेक्षा रखता है। सभ्यता का मूल तत्त्व प्रगतिशीलता कहा गया है, किन्तु प्रगति का निर्धारण लक्ष्य-सापेक्ष है। ऐहिक सुख को लक्ष्य मानने पर अनिवार्य कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। प्राणि-विकास में सुख का स्थान आनुषंगिक रहा है, न कि मुख्य। मनुष्य मुख्यत. सुखापेक्षी प्राणी न होकर आत्मापेक्षी है। स्वभाव क्या है, यही जिज्ञासा मनुष्य के लिए प्रगति की मुख्य प्रेरणा है। इसकी पूर्ति के लिए प्रागैतिहासिक समाज में अधिक स्थान था या ऐतिहासिक समाज में, यह मीमांस्य है।

कदाचित् रूसो का भी यह मन्तव्य नहीं था कि सभ्य समाज को फिर से आदिम अवस्था में लौट जाना चाहिए। न यह सम्भव है, न वास्तविक प्रागैतिहासिक समाज किसी प्रकार आदर्श ही माने जा सकते हैं। इतना अवश्य है कि प्राचीनतम समाज पुरुष प्रधान था, यन्त्र प्रधान अथवा अर्थदास नहीं। किन्तु शीघ्र ही प्रागैतिहासिक काल में भी अर्थ परायणता एवं सम्पत्ति वैषम्य के विष-बीज

प्रकट हो गये थे। सभ्यता अतीतापेक्षी न होकर अनागतप्रेक्षी है। इस अनागत में यदि ऐसी प्रकृष्टतर 'अराजकता' आविर्भूत हो जिसमें दण्डनिरपेक्ष धर्म ही शासक रहे, तो प्रागितिहास में दृष्ट लुप्त गुण का पुनराधान हो जायेगा।

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी में एक अभाव की समुचित पूर्ति करती है। मुझे विश्वास है कि प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व तथा नृतत्त्वशास्त्र के विद्यार्थियों तथा सामान्य जिज्ञासुओं के लिए यह अतीव उपयोगी सिद्ध होगी।

—गोविन्दचन्द्र पाण्डेय

अध्यक्ष,
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय।

---

"I want to know what were the steps by which men passed from barbarism to civilization."

—VOLTAIRE

यूरोप और एशिया का अवस पचास सहस्र वर्ष पूर्व का सम्भावित भौगोलिक स्वरूप
हिम
जल
भूमि
आधुनिक सीमायें

मानचित्र १
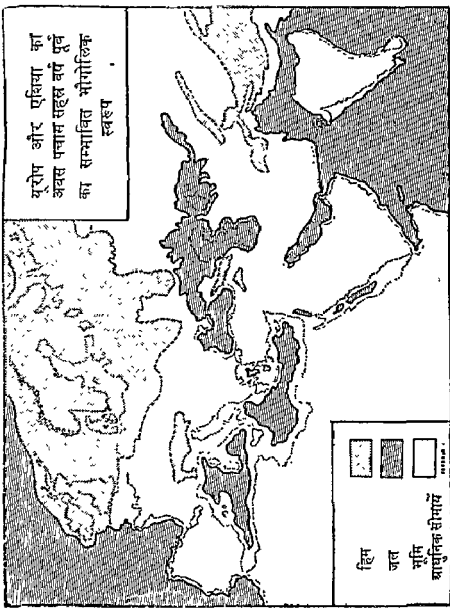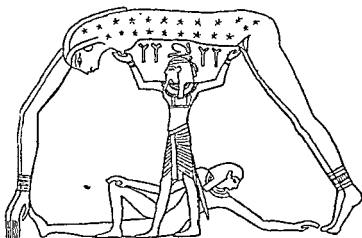
१

# पृथिवी का जन्म और जीवन का विकास

"In the beginning God created the heaven and the earth And the earth was without form, and void; and darkness was upon the face of the deep. And the Spirit of God moved upon the face of the waters." —Genesis.

मानव-सभ्यता के जन्म और विकास का नाटक अब से कई लाख वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ। तब से लेकर अब तक इसके कुल कितने अंक खेले जा चुके हैं और उनमें कुल कितने पात्रों ने अभिनय किया है, इसकी गणना करना सहज नही है। इस कठिनाई का प्रधान कारण है इस नाटक का विचित्र स्वरूप। साधारण नाटकों में पात्रों से पहले रिहर्सल कराया जाता है और प्रत्येक पात्र को बता दिया जाता है कि उसकी भूमिका कैसी और कितनी लम्बी है। लेकिन इस नाटक का न तो कभी रिहर्सल होता है और न इसके पात्र अपनी भूमिका से परिचित होते

इस पृष्ठ के ऊपर दिया गया चित्र प्रागैतिहासिक मिश्र निवासियों की सृष्टि-विषयक कल्पना का उन्हीं के द्वारा अङ्कन है। इसमे सबसे नीचे पृथिवीदेव केब लेटा हुआ है। उसके पास वायुदेव शु खडा है। वह गगन को, जिसका अङ्कन एक देवी के रूप में हुआ है, सहारा दे रहा है। द्रष्टव्य है कि गगनदेवी का शरीर तारों से भरा हुआ है और वह झुककर पृथिवीदेव के ऊपर एक गुम्बद सा बनाये हुए है।

है। सबसे विचित्र बात यह है कि इस नाटक के बहुत से दृश्य एक साथ चलते हैं, लेकिन कोई दृश्य शीघ्र समाप्त हो जाता है और कोई बहुत दीर्घ समय तक चलता है। उदाहरण के लिए इसका पहला दृश्य, जिसका हमें अध्ययन करना है, कई लाख वर्ष तक चलता है, लेकिन बीच के कुछ दृश्य कुछ दशकों पश्चात् समाप्त हो जाते है। इसके अतिरिक्त इस नाटक का अन्त कब, कैसे और कहाँ होगा, इसका ज्ञान भी किसी को नहीं है। जितना नाटक खेला जा चुका है उसका ज्ञान प्राप्त करना भी बड़ा कठिन है, क्योंकि खेले जा चुके अंश के बहुत से पृष्ठ विलुप्त होगये है और जो पुराने पात्र अब तक रंगमंच पर अवस्थित हैं वे अपनी पुरानी भूमिका भूल चुके है। इसके प्राचीनतम अंश का अध्ययन करना, जो हमारा उद्देश्य है, विशेष रूप से कठिन है क्योंकि उस युग में लिपि का अस्तित्व न होने के कारण हमें पूर्णतः पुरातात्त्विक साक्ष्यों पर अवलम्बित रहना पड़ता है और पुरातात्त्विक साक्ष्य विश्वसनीय होने पर भी मानव-जीवन के कुछ अङ्गों पर ही प्रकाश डालने मे समर्थ होते है।

## हमारी पृथिवी

**सृष्टि में पृथिवी का स्थान**—आजकल लगभग सभी व्यक्ति यह जानते है कि हमारी पृथिवी नारंगी के आकार की तरह गोल है और सूर्य के चारो ओर चक्कर काटती रहती है। इसका व्यास लगभग ८,००० मील और परिधि २५,००० मील है। यह तथ्य हम आधुनिक काल मे वैज्ञानिक अनुसन्धानों के द्वारा जान पाये है। लेकिन आदिम मनुष्य के लिए अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह सोचना सर्वथा सहज और स्वाभाविक था कि पृथिवी गोल न होकर चपटी है और सूर्य तथा चांद इसके चारों ओर चक्कर लगाते है। बैबिलोन, मिश्र और अन्य प्राचीन देशो में शताब्दियों तक खगोल-विद्या सम्बन्धी खोजे होने के बावजूद इससे मिलते-जुलते विचार मान्य रहे। भारत मे आर्यभट (जन्म ४७६ ई०) ने सूर्य के स्थिर होने और पृथिवी के उसके चारो ओर घूमने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तथा पृथिवी की परिधि २४,८३५ मील बताई। परन्तु अभाग्यवश उनके मत को स्वयं भारत के परवर्ती विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया। यूरोप में आधुनिक काल मे सर्वप्रथम कोपरनिकस् (१५ वी शताब्दी) ने सूर्य के चारो ओर पृथिवी के घूमने के सिद्धान्त को मान्यता दी। तब से वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से पृथिवी और सृष्टि के आकार और स्वरूप के विषय में हमारे ज्ञान मे निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। अब हम जानते है कि हमारी पृथिवी एक ग्रह है और सौर-मण्डल की सदस्या है। सूर्य से इसकी दूरी नौ करोड़ मील से साढ़े नौ करोड़ मील तक रहती है। सौर-परिवार के अन्य ग्रह तो सूर्य से सैकड़ों करोड़ मील दूर पड़ते हैं। हमारा सौर-मंडल आकाशगंगा के असंख्य सौर-मण्डलों

में से एक है और स्वयं आकाशगंगा सृष्टि की अगणित आकाशगंगाओं में से एक है। इस सृष्टि में ऐसे बहुत से नक्षत्र हैं जिनका प्रकाश, जो एक सेकेंड में एक लाख छियासी हज़ार मील की गति से चलता है, हमारी पृथिवी तक अरबों वर्षों में भी नही पहुँच पाता। ऐसी सृष्टि मे, जिसकी विशालता की कल्पना करना भी असम्भव है, हमारी पृथिवी महासमुद्र में एक बूँद के बराबर है।

**पृथिवी का जन्म**—पृथिवी की आयु के विषय में प्राचीन मनुष्य की धारणायें बहुत भ्रमपूर्ण थी। इस क्षेत्र में भी सम्भवतः भारतीय विचारकों के अतिरिक्त किसी अन्य देश के विद्वान् सत्य के निकट नही पहुँच पाये। यूरोप में तो अट्ठारहवीं शताब्दी ई० तक यह विश्वास प्राप्त होता है कि सृष्टि की रचना ईश्वर ने ४००४ ई० पू० मे, अब से लगभग छः सहस्र वर्ष पूर्व, की थी। पहले उसने पृथिवी और आकाश बनाए और फिर वनस्पति, जीव-जन्तु और मनुष्य। इस कार्य में उसे कुल छ. दिन लगे। यह भ्रामक विचार यहूदियों की बाइबिल पर आधारित था। मुसलमानों की धर्म-पुस्तक कुरान में भी इसी मत का प्रतिपादन किया गया है। इसी से मिलता-जुलता विवरण पारसियों के धर्मग्रन्थ 'अवेस्ता' में मिलता है। लेकिन आधुनिक काल मे खगोल-विद्या और भूगर्भ-विद्या, विशेषतः लुप्त-जन्तुशास्त्र और लुप्त-वनस्पतिशास्त्र की सहायता से यह सिद्ध कर दिया गया है कि पृथिवी तथा अन्य ग्रह मूलतः सूर्य के अंश थे। लगभग साढ़े चार अरब वर्ष पूर्व जब पृथिवी तथा अन्य ग्रहों का अस्तित्व न था, सूर्य का आकार अब से विशालतर था। उस विशालतर सूर्य में एक दिन सहसा भीषण विस्फोट हुआ। इसका कारण था किसी अन्य विशाल नक्षत्र का अचानक सूर्य के अत्यन्त निकट आ जाना। उसके आकर्षण से सूर्य में गैस की विशाल तरंगें उठीं। उनमें से एक तरंग प्रचण्ड आकर्षण के वेग के कारण सूर्य से पृथक हो गई और बूंदो के रूप में बिखर गयी। इन विशृंखलित बूंदों से पृथिवी, शुक्र, बुध, मंगल शनि तथा बृहस्पति इत्यादि ग्रह बने जो सूर्य के आकर्षण के कारण उसके चारों ओर चक्कर लगाने लगे। इस प्रकार हमारी पृथिवी अब से साढ़े-चार अरब वर्ष पूर्व स्वतन्त्र रूप से अस्तित्व मे आई।

## जीवन का विकास

**जीवन का उद्भव**—पृथिवी पर जीवन का उद्भव कैसे और कब हुआ यह कहना कठिन है। प्राचीनकाल मे यह विश्वास किया जाता था कि परमात्मा ने सब प्रकार की वनस्पतियाँ और जीव एक बार ही उत्पन्न कर दिये थे और फिर वंशानुवंश उनकी परम्परा चलती रही। परन्तु आधुनिक काल में अधिकांश विद्वान् यह मानते है कि पृथिवी पर रासायनिक तथा भौतिक प्रक्रियाओं के क्रम:

स्वरूप भौतिक तत्त्व से **जीवतत्त्व** स्वयं ही अस्तित्व मे आ गया था। जीव के प्रत्येक रूप का आधार 'प्रोटोप्लाज़म' नाम का एक तत्त्व है जो अत्यन्त जटिल दैहिक-रासायनिक संगठन है। इस तत्त्व की सरचना का विश्लेषण अभी तक नही हो पाया है, इसलिए जीवन का उद्‌भव अभी तक एक रहस्य बना हुआ है। सम्भवत. जीवन का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव छिछले जल मे धूप से प्रकाशित स्थलों पर एक स्वयं पूर्ण जीवकोष (Cell) वाले प्राणी—**प्रोटोजोआ**—के रूप में हुआ। यह प्राणी बहुत ही सूक्ष्म—अस्थि, खाल और खोल रहित—लसलसी झिल्ली के समान रहा होगा। कालान्तर मे बाह्य परिस्थितियो मे परिवर्तन होने पर उसकी शरीर-सरचना भी सरल से जटिल होती चली गई जिसमे एक जीवकोषी से बहुजीवकोषी प्राणी—**मेटाजोआ**—अस्तित्व मे आये। जीवों के विकास के इस सिद्धान्त को प्राणीशास्त्र मे 'विकासवाद' कहते है। इसके प्रतिपादको में फ्रास के लेमार्क **और इंगलैण्ड के डार्विन** (१८०९-१८८२ ई०) तथा एल्फ्रेड वालेस (१८२३-१९१३ ई०) नामक विद्वान् उल्लेखनीय है।

**विकासवाद**—विकासवाद के अनुसार प्रत्येक प्राणी की सन्तान अपने माता-पिता के अनुरूप होती है; किन्तु यह अनुवंशीयता होने के बावजूद वह कुछ बातों में माता-पिता से भिन्न भी होती है। उसके शारीरिक अवयव और स्वभाव उसके माता-पिता से पूर्णतः नही मिलते। दूसरी ओर प्रत्येक प्राणी को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अपने को प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुकूल बनाना पड़ता है। डार्विन के अनुसार प्रत्येक नस्ल के प्राणियो मे नवागन्तुको की सख्या उससे कही अधिक होती है जितनी की उदरपूर्ति प्रकृति कर सकती है। इसके परिणाम स्वरूप प्राणियो मे आत्मरक्षा के लिए संघर्ष होता है। इसे विकासवाद मे 'जीवन-संघर्ष नियम' (Struggle for Existence) कहते है। इस सघर्ष के कारण शरीर के जो अवयव नई प्राकृतिक परिस्थितियो में सहायक होते हैं, वे विकसित होने लगते हैं और जो अवयव व्यर्थ होते है वे लुप्त होने लगते हैं। ऐसे किसी निरन्तर परिवर्तन के कारण ही प्राणियों का जाति-परिवर्तन हो जाता है। दूसरे शब्दों मे प्रकृति मे वही प्राणी जीवित रहते है जो स्वय को प्राकृतिक वातावरण के अनुकूल बना लेते है और शेष नष्ट हो जाते है। इस नियम को **'प्राकृतिक निर्वाचन'** (Natural Selection) या **'योग्यतम का अनुजीवन'** (Survival of the Fittest) कहते है। उदाहरण के लिए एक ऐसे कीड़े को लीजिए जो सूखी काली जगह मे रहता है। उसकी सन्तानों मे अधिकांश कीड़े काले या लाल और दो-चार हरे हैं। अब अगर परिस्थितियाँ बदल जाएँ और वह स्थान हरा-भरा हो जाए तो हरे रंग के कीडो को अन्य रंगो के कीड़ों से अधिक सुविधा होगी, क्योंकि वे हरे पत्तों मे छिपकर शत्रुओं से अपनी

रक्षा कर लेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि कुछ ही समय में हरे रंग के कीड़ों की संख्या बढ़ जायेगी और अन्य रंग के कीड़ों की संख्या घट जायेगी। इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि यह अनिवार्य नहीं है कि विकास अविच्छिन्न प्रवाह की भाँति चले और उसकी प्रत्येक कड़ी दूसरी कड़ी से जुड़ी हुई मिले। ऐसी स्थितियाँ भी सम्भव है जिनमें जीव एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक छलाँग मारकर पहुँच जाता है। दूसरे, यह भी अनिवार्य नहीं है कि किसी जाति का उच्चतर रूप आने पर निम्नतर रूप सर्वथा विलुप्त हो जाये। बहुधा निम्नतर प्राणियों की स्थिति भी बनी रहती है; अन्तर केवल यह होता है कि उनकी गति-विधि का क्षेत्र सीमित हो जाता है।

डार्विन ने विकासवाद की परिकल्पना को केवल पशुओं पर ही नहीं मनुष्यों पर भी लागू किया। उसके पश्चात् इस सिद्धान्त में बहुत से विद्वानों ने संशोधन प्रस्तुत किये। उदाहरणार्थ डार्विन के इस विचार का कि प्राणी को अपने माता-पिता द्वारा विकसित सब नये अवयव मिल जाते है, जर्मन विद्वान् ऑगस्ट वीज़मान (August Weismann) ने विरोध किया। उसने बताया कि प्राणियों में दो प्रकार के कोष होते है—दैहिक (Somatic) तथा आनुवंशिक (Genetic)। दैहिक कोषों में होने वाले परिवर्तनों का आनुवंशिक कोषों पर कोई प्रभाव नही पड़ता। इसलिए किसी प्राणी के शरीर में उसके माता-पिता के वही गुण आ सकते हैं जो उनके जनन-द्रव्य (Germplasm) में रहे हों। इसी प्रकार १६०१ ई० में डच विद्वान् ह्यगो द व्रीज (Hugo De Vries) ने आस्ट्रियन पादरी ग्रीगोर मेन्डल (१८२२-८४ ई०) के 'अनुवंशीयता-सिद्धान्त' के आधार पर नवोत्पत्ति के कारणों के विषय मे अपनी परिकल्पना (Mutation Hypothesis) प्रकाशित की। व्रीज का विचार है कि प्राणियों में विकास का कारण शनैः शनैः होने वाले परिवर्तन नही, वरन् यकायक होने वाले तात्विक परिवर्तन (Mutations) होते हैं जिनसे थोड़े समय में ही प्राणियों की जाति में परिवर्तन हो सकता है। व्रीज के सिद्धान्त में हाल ही में, Goldschmidt (१९४०) तथा सिम्पसन (१९४४) इत्यादि विद्वानों ने संशोधन किये हैं।

## जीवन का इतिहास

**स्तरीय-चट्टानें**—जीवन का प्रादुर्भाव कब हुआ, यह ठीक-ठीक कहना असम्भव है। इतना निश्चित है कि पृथिवी के अस्तित्व में आने के कम-से-कम दो अरब वर्ष बाद तक इस पर जीवन की स्थिति सम्भव नहीं थी। अपने जन्म के समय पृथिवी गैसीय अग्नि का एक भयंकर गोला थी। लेकिन धीरे-धीरे यह ठण्डी हुई और इसका ऊपरी स्तर पहले तरल और फिर ठोस अवस्था में आया और अन्त

मे चट्टानों के रूप में परिवर्तित होगया। उस समय तक जल पृथिवी पर केवल वाष्प रूप में रहा होगा लेकिन कालान्तर मे यह भी ठण्डा होकर बरसने लगा। इस जल से पृथिवी के गड्ढे झीलो, समुद्रों और महासमुद्रो मे परिवर्तित हो गये। वर्षा और हवा का एक प्रभाव और भी पड़ा। इनके सतत 'आक्रमणों' के कारण चट्टानो का बहुत सा अंश टूटकर मिट्टी के रूप में पृथिवी पर फैल गया। इन प्रक्रियाओं मे लगभग दो अरब वर्ष लगे लेकिन अन्त मे, अब से लगभग ढाई अरब वर्ष पूर्व, पृथिवी की अवस्था ऐसी हो गई कि यहाँ जीवित प्राणी रह सके। इस दीर्घ काल को, जो सूर्य से पृथिवी के ठण्डी होकर ग्रह के रूप में परिवर्तित होने और समुद्रो का निर्माण होने तक व्यतीत हुआ, भूगर्भवेत्ता **'सृष्टि-समय'** (Cosmic Time) कहते है। इस काल का अध्ययन करने के लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध नही है। लेकिन इसके बाद के युग का, जिसे **'भूगर्भशास्त्रीय समय'** (Geologic Time) कहा जाता है, अध्ययन स्तरीय-चट्टानों की सहायता से किया जा सकता है (तालिका १)।

स्तरीय-चट्टानें (Sedimentary Rocks) भूगर्भीय इतिहास के वे पृष्ठ हैं जिनकी सहायता से हम जीवन के विकास का अध्ययन करते है। ये सरिता, वायु तथा हिमनदी (Glacier) जैसे संवाहन के साधनों के द्वारा लाये हुए चूर्णों के पर्तों मे बनती है। ऋतु-अपक्षय (Weathering) तथा आवरण-क्षय (Erosion) द्वारा पूर्ववर्ती चट्टानों के क्षय होने पर चूर्ण (Sediments) बनते है। ये चूर्ण उपर्युक्त साधनों द्वारा लाये जाकर एक स्थान पर एकत्र होते रहते है। धीरे-धीरे चूर्ण के ढीले कणों के बीच सिलिका (Silica), मृत्तिका (Clay), कार्बोनेट, लोहा तथा नमक जैसे पदार्थ पानी से छन-छनकर जमा हो जाते है। इस तरह वेल्डिग (Welding) और सीमेन्टेशन (Cementation) होने पर ये चूर्ण की पर्तें ठोस चट्टानो का रूप धारण कर लेती हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि ये पर्तों अथवा तहो के रूप में निर्मित होती है। जब स्थिर जल में ढीले या बिखरे पदार्थ बहाकर लाये जाते है तो सबसे पहले बड़े कणो और उनके बाद बारीक कणों की तहें जमती है। इस प्रकार बड़े कणों वाली पर्तें नीचे और छोटे कणों वाली पर्तें ऊपर रहती हैं। इस प्रक्रिया के बराबर चलते रहने पर तह के ऊपर तह जमती चली जाती हैं। इन्ही चट्टानो को **स्तरीय-चट्टानें** कहते है। इन चट्टानों की तहों—स्तरो—मे उस काल के प्राणियों और वनस्पतियो के अनेक अवशेष जैसे अस्थियाँ, पत्ते, टहनियां, वर्षा की बूदो के चिह्न तथा पद-चिह्न तथा उपकरण इत्यादि दब जाते हैं जिस काल में उन स्तरों का निर्माण होता है। ऐसे प्राचीन चिह्न और वस्तुएँ बहुधा पथराई—प्रस्तरित—अवस्था में मिलती हैं। अँग्रेजी मे इन्हें फॉसिल (Fossil) कहा जाता है। इन अवशेषों अथवा चट्टानों का

अध्ययन करके और वैज्ञानिक विधियों द्वारा इनका काल निर्णय करके जीवन के विकास और प्रारम्भिक मानव-सभ्यता के इतिहास का पुनर्निर्माण किया जाता है।[1]

स्तरीय चट्टानें कई प्रकार की होती हैं। उदाहरणार्थ बालू से बनी चट्टान बलुहा-पत्थर (Sandstone) की चट्टानें कहलाती है। विभिन्न आकार के कंकड़-पत्थरों (Pebbles) से युक्त पथरीली मिट्टी अथवा बजरी (Gravel) के बीच मे चिकनी मिट्टी आने से जो चट्टानें बनती है उन्हें कॉंग्लोमेरेट (Conglomerate) कहते है। कॉंग्लोमेरेट के टुकडे अधिकतर गोल अथवा अण्डाकार होते है, जिससे प्रकट होता है कि ये नदी द्वारा दूर तक बहाकर लाये गए हैं।

वैज्ञानिको ने स्तरीय चट्टानो से प्राप्त अवशेषों का अध्ययन करके जीवन के विकास के इतिहास को पाँच अध्यायों मे विभाजित किया है (तालिका १)।

---

१. चट्टानो और प्रागैतिहासिक अवशेषों के काल-निर्णय के लिए विशेषतः चार प्रकार की विधियाँ अपनाई जाती है—

(१) पहली विधि है चट्टानो की मोटाई की जाँच करना और प्रतिवर्ष जितनी मिट्टी जमती है, उसके हिसाब मे चट्टान की आयु को निर्धारित करना। लेकिन इसमें बहुत सी गलतियाँ हो सकती हैं क्योंकि सभी स्थानों पर एक वर्ष में समान मोटाई की तहें नहीं जमतीं। दूसरे, भूकम्प आदि प्राकृतिक दुर्घटनाओं से चट्टानो की तहें ऊपर-नीचे भी हो जाती हैं।

(२) बहुत से विद्वानो ने हिमयुगों की अवधि की गणना करके तत्कालीन स्तरीय चट्टानों की तिथि मालूम करने की चेष्टा की हैं। हिमयुगों के आने का कारण सौयिक विकिरण (Solar Radiation) मे अन्तर पड़ जाना और सौयिक विकिरण मे अन्तर पड़ने का कारण सम्भवत. ग्रहों की पारस्परिक आकर्षण शक्ति में व्यवधान पड जाने से पृथिवी की कक्षा (Orbit) में उलटफेर हो जाना था। इसलिये, आस्ट्रोनोमिक्ल-विधि से पृथिवी की कक्षा मे होने वाले उलट-फेरों (Perturbations) का अध्ययन करके हिमयुगों की और हिमयुगों के द्वारा तत्कालीन समय में बनी चट्टानों और उनमें प्राप्त होने वाले अवशेषो की तिथि निश्चित की जा सकती है।

(३) तीसरी विधि 'फ्लोरीन परीक्षण कहलाती है। प्रत्येक जीव की हड्डी ज्यों-ज्यों पथराकर फॉसिल बनती जाती है त्यों-त्यों वह 'फ्लोरीन' नामक गैस अपने अन्दर जज़्ब करती जाती है। जितनी अधिक पुरानी हड्डी होगी उसमे फ्लोरीन की मात्रा उतनी ही अधिक होगी।

(४) चौथी विधि 'कार्बन परीक्षण' कहलाती है। प्रत्येक प्राणी में जीवितावस्था में कार्बन १४ नामक पदार्थ होता है। मृत्यु के उपरान्त कार्बन १४ धीरे-धीरे ध्वस्त होने लगता है परन्तु इसके विध्वंस की गति बहुत धीमी होती है। लगभग ५७०० वर्ष में इसकी आधी मात्रा और ११,४०० वर्ष में एक चौथाई मात्रा शेष रहती है। इसलिये प्राचीन प्रस्तरित अवशेषों मे कार्बन १४ की मात्रा जानकर उनकी आयु निर्धारित की जा सकती है। इस विधि से ५०,००० वर्ष पुराने अवशेषों तक की आयु निश्चित करने मे सफलता प्राप्त हुई है।

(१) अजीव-युग (Azoic Age)—स्तरीय-चट्टानों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इनके प्राचीनतम स्तर २७० करोड़ वर्ष पुराने है। इनमे अब से १६० करोड वर्ष पुराने स्तरो तक में जीवित प्राणियो के अवशेष प्राप्त नही होते। अतः इन चट्टानों के युग को अजीव युग कहा जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि अजीव युग में बहुत ही सूक्ष्म प्राणी, जिनका अस्तित्व सिद्ध करना असम्भव है, अस्तित्व में आ चुके थे। इसलिए वे इस युग को प्रजीव युग (Archaeozoic Age) कहते है।

(२) प्रारम्भिक-जीवयुग (Proterozoic Age)—इस युग मे पृथिवी पर जीवन का निश्चित रूप से प्रादुर्भाव हुआ। यह युग १२० करोड वर्ष पूर्व से ५५ करोड वर्ष पूर्व तक चला। इस युग के प्राणी बहुत सूक्ष्म लसलसी झिल्ली—जेलीफिश—के रूप मे थे। इनके न हड्डी होती थी न खाल और न खोल। इनके अवशेष स्तरीय-चट्टानों में प्राप्त नही होते लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से इनके अस्तित्व का अनुमान किया जा सकता है। आज भी संसार में ऐसे बहुत से सूक्ष्म प्राणी है जिनके अस्तित्व का कोई भी प्रत्यक्ष प्रमाण भावी भूगर्भवेत्ताओं को नहीं मिलेगा। इन प्रारम्भिक प्राणियो का प्रादुर्भाव सम्भवतः छिछले जल मे हुआ। इसी प्रकार वनस्पति जगत् का प्रारम्भ भी इस युग मे काई की तरह के पौधों के रूप मे हुआ। क्योंकि ये प्रारम्भिक जलचर प्राणी और पौधे आधुनिक प्राणियो और वनस्पति जगत् के पूर्वज थे, इसलिए आज भी समस्त जीव और वनस्पति किसी-न-किसी रूप में, कम या अधिक, जल पर निर्भर रहते है।

(३) प्राचीन-जीवयुग (Palaeozoic Age)—यह युग अब से लगभग ५५ करोड वर्ष पूर्व से २० करोड़ वर्ष पूर्व तक चला। इसे प्राथमिक-युग (Primary Period) भी कहते हैं। इस युग के प्रारम्भ में ऐसे प्राणी अस्तित्व में आने लगते हैं जिनके शरीर पर सूर्य की प्रखर किरणो से बचाव के लिए एक खोल चढ़ा होता था। ऐसे खोल-युक्त प्राणियों मे छोटी-छोटी मछलियाँ, रेंगने वाले कीड़े, जल-बिच्छू और केंकड़े इत्यादि उल्लेखनीय हैं। जल-बिच्छू, जो ९ फीट तक लम्बा होता था प्राचीन-जीवयुग के प्रारम्भ मे पृथिवी का सर्वोच्च प्राणी था। लेकिन कुछ समय बाद परिस्थिति बदल जाती है और पथिवी पर मछलियों की संख्या बढ जाती है (चित्र २)। इनके आँख और दाँत इत्यादि अवयव भलीभाँति विकसित हो चुके थे और रीढ़ की हड्डी बन चुकी थी। इन मछलियो को संसार का रीढ की हड्डी वाला—पृष्ठवंशीय (Vertebrate)—प्राचीनतम प्राणी कहा जा सकता है। ये मछलियाँ साधारणतः २ फुट और कभी-कभी २० फुट तक लम्बी होती थी। इनकी संख्या इतनी अधिक थी कि प्राचीन-जीवयुग के इस भाग

को 'मत्स्य कल्प' (Age of Fishes) कहा जाता है। मत्स्यकल्प में जीवन जल तक सीमित था। भूमि अभी तक अजीव युग में रह रही थी। मत्स्यकल्प के अन्त में पृथिवी की जलवायु में भारी परिवर्तन हुए, जिससे भूमि भी प्राणियों के रहने योग्य हो गई। सर्वप्रथम वनस्पति जगत् जल से निकल कर दलदल भूमि की ओर फैला। उसके साथ अनेक प्रकार के कीड़े जैसे जल-विच्छू, कनखजूरे, केंकड़े और
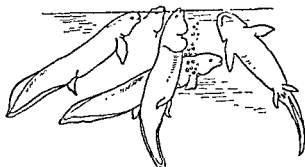
चित्र २ : हवा में सांस लेती मछलियाँ

मेढक, रेंगने वाले जीव अथवा सरीसृप (Reptiles) और विशालकाय मक्खी (Dragon-fly) इत्यादि भी दलदलों में आकर रहने लगे। स्मरणीय है कि भूमि की ओर बढ़ने वाले ये प्राणी अभी तक अर्द्ध-जलचर-अर्द्ध-थलचर अर्थात् उभयचर (Amphibia) थे। उन्होंने हवा में साँस लेना सीख लिया था लेकिन मूलतः जलचर होने के कारण उनमे अभी तक यह क्षमता नही आ पायी थी कि जल से बहुत दूर रह सकें। आजकल के मेढ़कों की तरह उन्हे अण्डे देने के लिए जल में जाना पड़ता था और उनके बच्चे अपना प्रारम्भिक जीवन जल ही में व्यतीत करते थे। इसी प्रकार इस काल की वनस्पति को भी अपनी जड़ें जल ही में फैलानी पड़ती थी। इतना होने पर भी इस युग में पृथिवी पर वनस्पति का अत्यधिक बाहुल्य रहा। अधिकाँशतः उसी के अवशेष कोयले के रूप में आजकल खानों से खोदकर निकाले जाते हैं। इसलिए प्राचीन-जीवयुग के अन्तिम भाग को 'कार्बन कल्प' कहा जाता है।

(४) **मध्य-जीवयुग** (Mesozoic Age)—यह युग आज से लगभग २० करोड़ वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ और ६ करोड़ वर्ष पूर्व तक चला। इसे **द्वितीयक-युग** (Secondary Period) भी कहते हैं। इस युग के प्रारम्भ में पृथिवी के जलवायु मे अनेक परिवर्तन हुए जिनके कारण प्राचीन जीवयुग के वनस्पति और जीव-जगत् का बहुत बड़ा भाग नष्ट हो गया। लेकिन परिवर्तन और कठिनाई के युग

भूगर्भीय समय-खण्ड
और

पिता का शिशु को जन्म देते ही उससे पृथक हो जाना था। बच्चों में माता-पिता के साथ सम्बन्ध की कोई अनुभूति नहीं होती थी। लेकिन स्तनपायी प्राणियों के शिशु काफी समय तक माता-पिता पर निर्भर रहते थे। इससे उनमें परस्पर संवेदनात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता था। यह संवेदना केवल मूक ही नहीं होती थी; इन प्राणियों की वाक्-शक्ति भी अन्य प्राणियों से अधिक थी। इसलिए वे विभिन्न प्रकार की आवाजें करके अपना भाव प्रकट कर सकते थे। इसके दो परिणाम हुये। एक तो उनके शिशुओं के लिए माता-पिता के अनुभवों से लाभ उठाना सरल हो गया, जिससे उनकी बौद्धिक-चेतना का विकास हुआ। दूसरे, पारस्परिक सम्बन्धों की अनुभूति होने से सामाजिक भावना का जन्म हुआ। ये दोनों बातें सरीसृपों के लिए सम्भव नहीं थी।

## नर-वानर (Primate) परिवार

जीवशास्त्रियों ने स्तनपायी प्राणियों को कई वर्गों में विभाजित किया है। इनमें सर्वोच्च वर्ग नर-वानरों (Primates) का है, जिनमें एप, बन्दर, लंगूर और मानव इत्यादि आते है। इस वर्ग के प्राणियों में मादा के, साधारणतः वक्ष पर, दो स्तन-ग्रन्थियाँ होती है और वह एक बार में एक बच्चे को जन्म देती है। यह संख्या सामान्यतः दो-तीन से ऊपर नहीं जाती। यद्यपि इस वर्ग के प्राचीन अवशेष बहुत कम प्राप्त होते है तथापि यह विश्वास किया जाता है कि अब से लगभग चार करोड़ वर्ष पूर्व 'बन्दरसम' प्राणी अस्तित्व में आ चुके थे। इन्हीं का धीरे-धीरे 'मनुष्यसम' प्राणियों के रूप में विकास हुआ। 'मनुष्यसम' प्राणी के अस्तित्व के प्राचीनतम प्रमाण सम्भवतः ५-६ लाख वर्ष से अधिक पुराने हैं। यह प्राणी यद्यपि पूर्ण मनुष्य नहीं था तथापि इसकी आकृति और शरीर-रचना 'पूर्ण मनुष्य' से बहुत कुछ मिलती-जुलती थी। इसलिए यह अनुमान किया जाता है कि 'मनुष्यसम' प्राणी ही विकसित होकर पूर्णमानव बना होगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मानव के उद्भव और विकास के दृष्टिकोण से नव-जीवयुग का, जिसे तृतीयक और चतुर्थक कालों में बाँटा जाता है, अत्यधिक महत्त्व है। अध्ययन की सुविधा के लिए विद्वानों ने इन कालों को और छोटे-छोटे युगों में बाँटा है। तृतीयक (Tertiary period) के चार भाग किये जाते हैं—

(अ) आदि-नूतन-युग (Eocene period): यह युग छः करोड वर्ष पूर्व से साढ़े-तीन करोड वर्ष पूर्व तक चलता है। इस युग में पृथिवी की जलवायु अब से अधिक उष्ण थी। जैसा हम देख चुके हैं इस युग में स्तनपायी प्राणियों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई, लेकिन मनुष्य का प्रादुर्भाव अभी तक नहीं हुआ था।

(आ) आदि-नूतन-युग (Oligocene period): यह युग साढ़े-तीन करोड़

भूगर्भीय समय-खण्ड
और

हैं कि मनुष्य नर-वानर (Primate) परिवार का सदस्य है और उसके तथा इस परिवार के अन्य प्राणियों—बन्दर, लंगूर, गोरिल्ला, चिम्पांजी तथा एप इत्यादि के पूर्वज एक ही थे।[१] इन पूर्वजों का विकास स्तनपायी जीवों के किसी प्राचीनतर परिवार से और मूलत: प्रारम्भिक जीव-युग के प्राणियों से हुआ होगा। बहुत से मानवेतर प्राणियों, जैसे घोड़ा और ऊँट, का इस प्रकार का क्रमिक विकास सिद्ध करने योग्य साक्ष्य उपलब्ध हो गये है, परन्तु, अभाग्यवश मानव के विकास की क्रमिक अवस्थाओं को सिद्ध करने योग्य पर्याप्त सामग्री अभी तक नही मिल पायी है। उसके विकास के बीच की कडी जिसे नृवंशशास्त्री लुप्त कड़ी (Missing link) कहते है, अभी तक अज्ञात है। लेकिन इस कडी के न मिलने से यह सिद्ध नही होता कि विकासवाद एक दोषपूर्ण सिद्धान्त है। यह भी हो सकता है कि हम इन कड़ियों को खोजने मे असफल रहे हो। जैसा कि हम देख चुके हैं प्राचीनतम मानव और अन्य प्राणियों के विकास का अध्ययन करने का प्रमुख साधन स्तरीय-चट्टानें हैं। स्मरणीय है कि स्तरीय चट्टानों मे अधिकांशत: उन्ही जीवों के अवशेष मिलते हैं जो जल मे डूब जाते थे। लेकिन प्रारम्भिक मानव के तैरना न जानने के कारण गहरे जल मे जाने और डूबने की सम्भावना कम थी, इसलिए उसके प्रस्तरित अवशेष स्तरीय चट्टानो मे विरल और दुष्प्राप्य हैं। दूसरे, स्तरीय-चट्टानो का अध्ययन सभी देशों में भलीभाँति नही हो पाया है। एशिया और अफ्रीका के विशाल भूखंड अभी तक अनन्वेषित ही है। इसके अतिरिक्त यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि प्राचीनतम मानवों की संख्या बहुत अधिक नही रही होगी। इसलिए उनके अवशेषों के पर्याप्त मात्रा मे न मिलने और उनके विकास मे कुछ कड़ियों का अभाव होने से विकासवाद को गलत नही कहा जा सकता।

**मनुष्य का आदिपूर्वज**—मनुष्य का आदि पूर्वज कौन सा प्राणी था, इसके विषय मे बहुत सी भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित है। साधारणत: यह विश्वास किया जाता है कि विकासवादी मनुष्य का आदिपूर्वज बन्दर को मानते है। यह बात नही है। विकासवादी मनुष्य का विकास बन्दर से नहीं वरन् किसी 'एन्थ्रोपॉएड एप' से मानते है।

---

१. मनुष्य की प्राचीनता का प्रतिपादन सर्वप्रथम बूशे-द-पर्थ (Boucher de Perthes) नामक विद्वान् ने किया। उसने १८४७ ई० मे सोम (Somme) नदी की घाटी मे एब्बेविले स्थान मे पुराने स्तर (Terrace) से एक मानव-निर्मित पाषाणोपकरण प्राप्त किया। इस उपकरण के साथ ऐसे प्राणियों के अस्थि-अवशेष मिले जिनकी प्राचीनता असंदिग्ध थी। १८५९ ई० मे, जिस वर्ष डार्विन की *Origin of Species* पुस्तक प्रकाशित हुई, प्रेस्टविक, इवान्स तथा फाकोनेर नामक सुप्रसिद्ध अंग्रेज भूगर्भशास्त्रियों ने रॉयल सोसाइटी के सम्मुख पर्थ के दावे का समर्थन किया और १८६३ ई० में ल्येल (Lyell) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Geological Evidence of the Antiquity of Man प्रकाशित कराई।

## मनुष्य की सफलता का रहस्य

**मनुष्य की प्रकृति और अन्य प्राणियों पर विजय के कारण**—मनुष्य एक स्तनपायी प्राणी है। उसके शिशु को जन्म लेने के बाद वर्षों तक माता-पिता की संरक्षता में रहना पड़ता है। इससे उसे न केवल अपने माता-पिता के वरन् समस्त समाज के सामूहिक अनुभवों से लाभ उठाने का अवसर मिलता है। इस प्रकार सामूहिक अनुभवों का भंडार भरता रहता है। इसके विपरीत अन्य प्राणियों को अधिकांशतः जीवन में अकेले संघर्ष करना पड़ता है और अपने ही अनुभवों के अनुसार चलना होता है। लेकिन यह कहा जा सकता है कि यह सुविधा सभी स्तनपायी प्राणियों को प्राप्त है। यह भी स्पष्ट ही है कि प्राचीनतम मनुष्य संख्या में और शारीरिक शक्ति के क्षेत्र में शेर, गजराज और भालू इत्यादि के साथ प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकता था। फिर मनुष्य को ही प्रकृति तथा अन्य प्राणियों पर विजय प्राप्त करने में सफलता क्यों मिली ?

मनुष्य को जीवन-संघर्ष में अन्य प्राणियों पर विजय प्राप्त करने में सफलता मिली, इसका कारण है उसकी **अपने को वातावरण के अनुकूल बना लेने की क्षमता**। उसको प्रकृति ने ऐसा बनाया है जिससे वह अन्य प्राणियों की तुलना में कठिनाइयों पर अधिक आसानी से विजय प्राप्त कर सकता है। वह जिन उपकरणों से सहायता लेता है वे अन्य प्राणियों के उपकरणों से सर्वथा भिन्न और उच्चकोटि के होते हैं। इनमें वाक्-शक्ति, मस्तिष्क और हाथ प्रमुख है।

(१) मनुष्य की **वाक्-शक्ति** अन्य प्राणियों से अधिक समुन्नत है। वह अपने गले से विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ निकाल सकता है। यह लाभ कुछ अन्य प्राणियों को भी प्राप्त है परन्तु मनुष्य जितने प्रकार की ध्वनियाँ कर सकता है उतनी अन्य प्राणी नहीं कर सकते। सामाजिक जीवन व्यतीत करने का उसे एक लाभ यह भी हुआ कि वह इन ध्वनियों को सर्वसम्मत अर्थ दे सका। मानव-शिशु जब बोलना सीखता है तब इसका अर्थ होता है, उसका इन ध्वनियों के सर्वसम्मत अर्थों को जानना। हम इनको भाषा कहते है। भाषा के माध्यम से सामाजिक अनुभवों से लाभ उठाने अर्थात ज्ञानोपार्जन में सुविधा होती है। उदाहरणार्थ इससे मनुष्य अपने बच्चे को बता सकता है कि उसे शेर के दिखाई देने पर क्या करना चाहिए। भाषाहीन प्राणी अपने शिशुओं को यह शिक्षा नहीं दे सकते।

(२) सामाजिक अनुभवों और भाषा के माध्यम से मनुष्य की **विचार-शक्ति** समुन्नत होती है। जब हम नारंगी शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारे मस्तिष्क में वास्तविक नारंगी के स्थान पर नारंगी का भाव-चित्र होता है। इस प्रकार के भाव-चित्रों को मिलाकर असंख्य भाव-चित्रों को, जिनका वास्तविक जीवन से

कोई सम्बन्ध नहीं होता, उत्पन्न किया जा सकता है। उदाहरण के लिए हम 'वृक्ष' और 'चाँदी' के भावों को मिलाकर 'चाँदी का पेड़' भाव उत्पन्न कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में हम सोच सकते हैं। सोचने या विचार कर सकने की शक्ति मनुष्य का सबसे बड़ा हथियार है। भाषा से तो उसे केवल अपने माता-पिता और समाज के अनुभवों का लाभ प्राप्त होता है परन्तु विचार-शक्ति की सहायता से वह कठिनाइयों पर स्वयं विजय प्राप्त कर सकता है। आग कपड़े को जला सकती है, यह बात मनुष्य कपड़े को जलते हुए देखे बिना सोच सकता है। यह शक्ति अन्य जीवों को प्राप्त नहीं है।

(३) मनुष्य के हाथ पहले अन्य चतुष्पदों के अगले पैरों की तरह शरीर का भार ढोने के काम मे आते थे। बाद में जब मनुष्य दो पैरों पर खड़ा होकर चलने लगा तो उसके अगले पैर अर्थात हाथ स्वतन्त्र हो गये। इनसे मनुष्य विविध प्रकार की क्रियाएँ कर सकता है। अन्य प्राणियों के हथियार अर्थात् पंजा, चोंच, और नाखून इत्यादि उनके शरीर के साथ जुड़े होते हैं और कुछ सीमित प्रकार की क्रियाएँ ही कर सकते हैं। लेकिन मनुष्य के हाथ के अँगूठे और अंगुलियों की बनावट ऐसी है कि वह इनसे अनेक प्रकार के हथियार और उपकरण बना सकता हैं। यह सुविधा भी अन्य प्राणियों को प्राप्त नही है।

## मानव सभ्यता के प्रमुख युग

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मनुष्य और अन्य प्राणियो में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि मनुष्य अपनी सुरक्षा और आजीविका के लिए हथियारों और औज़ारो का निर्माण करता है जबकि अन्य प्राणियों के हथियार उनके शरीर के. साथ जुड़े होते हैं। इसका आशय यह नही है कि मनुष्य आदिकाल से ही हथियारो का निर्माण करना जानता था। प्रारम्भ में वह निश्चित रूप से वृक्षो की डालों और नैसर्गिक प्रस्तर-खण्डो का हथियार के रूप में प्रयोग करता था। दूसरे शब्दों मे वह औजार-निर्माता के बजाय औजार-उपभोक्ता मात्र था। धीरे-धीरे अनुभव बढ़ने पर उसने स्वयं हथियार बनाना सीखा। यह स्पष्ट है कि उसके प्रारम्भिक औज़ार और हथियार बहुत साधारण रहे होंगे। लेकिन ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया उसके हथियार अधिकाधिक सुन्दर, मजबूत और उपयोगी होते गये। अतः मनुष्य के औज़ार वस्तुतः उसकी यान्त्रिक, औद्योगिक और वैज्ञानिक सफलताओं के प्रतीक हैं। इन हथियारों और औजारों को बनाने में उसने जिन द्रव्यों का उपयोग किया उनके अनुसार पुरातत्ववेत्ताओं ने सभ्यता के इतिहास को दो भागो मे विभाजित किया है—पाषाणकाल और धातुकाल। अध्ययन की सुविधा के लिए इन कालों को लघुतर युगों मे बाँटा जा सकता है।

(१) पाषाणकाल (The Stone Age): मानव-सभ्यता के इतिहास का प्रथम युग पाषाणकाल कहलाता है, क्योंकि इस काल में मनुष्य के हथियार और औज़ार मुख्यतः पाषाण के बनते थे। इस दीर्घकाल मे, जो लगभग प्लीस्टोसीन युग के समानान्तर चलता है, मानव के इतिहास का लगभग ६६% अश आ जाता है। उसने अपने अस्तित्व के प्रारम्भ मे जो पाषाण उपकरण बनाये वे देखने मे स्वाभाविक प्रस्तर-खण्डो के समान लगते है। इन उपकरणों को इयोलिथ (Eolith) और उस युग को, जिसमे इनका निर्माण हुआ, पाषाणयुग का उषःकाल (Eolithic Age) कहते हैं।

प्रथम अन्तर्हिमयुग से हमे ऐसे पाषाण-औज़ार मिलने लगते है जिनको मानव-निर्मित कहने मे कोई सन्देह नही हो सकता। ऐसे पाषाण उपकरणो को तीन युगों मे विभाजित किया जा सकता है :—

(अ) पूर्व-पाषाणकाल—(Palaeolithic Age or Old Stone Age): यह युग अब से पाँच-छः लाख वर्ष पूर्व से लगभग १२ हज़ार वर्ष पूर्व तक चला। इस काल में मानव की आजीविका शिकार और जंगली फलमूल पर निर्भर थी। वह पशु-पालन या कृषि-कर्म से परिचित नही था। उसके हथियार भी, कम-से-कम प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल (Early Palaeolithic Age) मे, बहुत भद्दे और बेडौल होते थे। लेकिन मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में (Middle Palaeolithic Age), जिस समय यूरोप मे नियण्डर्थल जाति निवास करती थी, कुछ अच्छे हथियार बनने लगे। नियण्डर्थल-युग का अन्त अब से लगभग तीस-चालीस सहस्र वर्ष पूर्व हुआ। उस समय तक विश्व में जितनी मानव जातियाँ रही, वे सब आधुनिक मानव जाति से मिलती जुलती होने पर भी शरीर-संरचना की दृष्टि से कुछ भिन्न थी। लेकिन परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल (Upper Palaeolithic Age) मे जो जातियाँ दिखाई देती है वे निश्चित रूप से आधुनिक मेधावी मानव जाति (Homo sapiens) की पूर्वज थीं। इस काल के मानवों की कलाकृतियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। आज भी मलाया, दक्षिणी अफ्रीका तथा उत्तर-पश्चिमी आस्ट्रेलिया मे ऐसी जातियाँ हैं जिनका रहन-सहन पूर्व-पाषाणकालीन मानवों के ढंग का है।

(आ) मध्य-पाषाणकाल (Mesolithic or Middle Stone Age): पूर्व-पाषाणकाल और नव-पाषाणकाल के मध्य मे कुछ स्थानों पर मानव संस्कृति ऐसे संक्रान्ति-काल से गुज़रती है जिसे पुरातत्त्व मे मध्य-पाषाणकाल कहा जाता है। शेष स्थानों पर पूर्व-पाषाणकाल के पश्चात् उत्तर-पाषाणकाल तुरन्त प्रारम्भ हो जाता है।

(इ) उत्तर-पाषाणकाल (Neolithic or New Stone Age): अब से लगभग

दस सहस्र वर्ष पूर्व मानव सभ्यता का दूसरा युग प्रारम्भ हुआ। भगर्भशास्त्र की दृष्टि से यह होलोसीन काल का पूर्ववर्ती भाग कहा जा सकता है। इस काल में मनुष्य ने पॉलिशयुक्त सुन्दर पाषाण उपकरण बनाये और बढती हुई आबादी की समस्या को हल करने के लिए पशुपालन और कृषि करना प्रारम्भ किया। इससे उसकी आर्थिक व्यवस्था पूर्व-पाषाणकाल से एकदम परिवर्तित हो जाती है। बहुत से स्थानों पर आदिम जातियाँ आज भी इस प्रकार की जीवन-प्रणाली अपनाये हुए है।

(२) **धातुकाल**—धातुकाल अब से ६-७ सहस्र वर्ष पूर्व सिन्धु नदी की घाटी से लेकर मिश्र और क्रीट तक विस्तृत भूप्रदेश में प्रारम्भ हुआ। इसको हम तीन भागों में बाँट सकते हैं:—

(अ) **ताम्रकाल**—धातुकाल के प्रारम्भ में लगभग दो सहस्र वर्ष से अधिक समय तक मनुष्य मुख्यतः ताम्र को अपने अस्त्र-शस्त्र और उपकरण बनाने के लिये प्रयुक्त करता रहा। ताम्र के उपयोग के साथ पाषाण का प्रयोग भी बराबर होता रहा, इसलिए इस युग को **ताम्र-प्रस्तरयुग** भी कहा जाता है। इस युग में पालदार नाव, पहिये और कुम्हार का चाक आविष्कृत हुए तथा पहिये और पशुओं की भारवाहक शक्ति के संयोग से बैलगाड़ियाँ बनाई गईं। इन आविष्कारों के परिणामस्वरूप समाज में विशिष्ट वर्ग अस्तित्व में आये तथा व्यक्ति और ग्रामों की आत्मनिर्भरता कम हुई।

(आ) **कांस्यकाल**—ताम्रकाल के अन्त में मनुष्य ने ताम्र मे टिन मिलाकर काँस्य बनाने की विधि का आविष्कार किया। इससे अधिक मजबूत उपकरण बनाना सम्भव हो गया। काँस्य के उपकरण बनाने वाले कारीगरो तथा कांस्य प्राप्त करने वाले तथा इससे निर्मित उपकरणो का आयात-निर्यात करने वाले व्यापारियों के लिए कृषि-कर्म में रुचि लेना सम्भव नहीं था। समाज के कुछ वर्गों के खाद्यान्न-उत्पादन से दूर हट जाने और आबादी बढ़ जाने के कारण अधिकाधिक भूमि मे कृषि करने की आवश्यकता हुई। इसलिये इस युग में मनुष्य नदियो की उर्वर घाटियों में बसने लगता है जिससे बांध बनाकर और नहरें निकाल कर वह भूमि की उर्वरता से लाभ उठा सके। परन्तु नदियों को नियन्त्रित करने के लिए विशाल मानव समूहों का स्थायी रूप से एक स्थान पर रहना आवश्यक था। इससे धीरे-धीरे नगर अस्तित्व में आये। इन नगरो के शासकों को अपने व्यापारियों के काफिलो की सुरक्षा और आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए सैनिको, कानूनों और न्यायालयों की तथा हिसाब-किताब रखने के लिये लिपिकों की आवश्यकता पड़ी। लिपि का आविष्कार हो जाने से नगर-सभ्यताओं के उदय के साथ-साथ ऐतिहासिक युग भी प्रारम्भ हो जाता है।

३
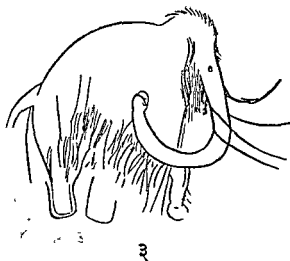
(इ) लौहकाल—लगभग १२०० ई० पू० में पश्चिमी एशिया में लोहे का साधारण उपकरण बनाने के लिये प्रयोग किया जाने लगा। लोहा काँस्य की तुलना मे अधिक आसानी से सुलभ हो जाता था और इससे बने हथियार तथा औज़ार अधिक प्रभावकारी और टिकाऊ होते थे। कृषि कर्म मे भी लोहे के औजारो का प्रयोग करके उत्पादन बढाया जा सकता था। अतएव तब से लोहा मानव के प्रयोग में आने वाली प्रमुखतम धातु बन गया। आज भी हम वस्तुतः लौहयुग मे ही रह रहे हैं।
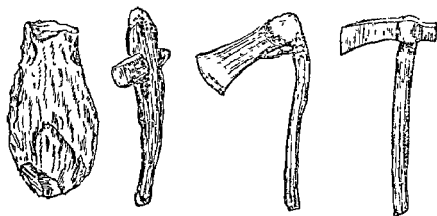
ऊपर दिये गये चित्र में प्रागैतिहासिक मानव के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हथियार—कुल्हाड़ी—के क्रमिक विकास की अवस्थाएँ अङ्कित की गई है। (१) पर्व-पापाणकालीन मानव का मुष्टि-छुरा; (२) नव-पापाणकालीन मानव की पॉलिश-दार लकड़ी के हत्ये वाली कुल्हाड़ी का नमूना; (३) काँस्य काल की खोखली कुल्हाड़ी जिसे लकड़ी के हत्थे मे लगाकर बाँध दिया जाता था, और (४) रोमन युग की लोहे की कुल्हाड़ी जिसका प्रयोग भारत मे अब तक होता है।

३
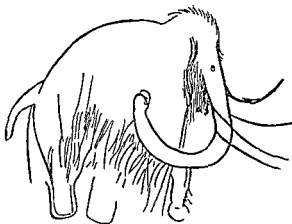
# पाषाणकाल का उपःकाल

## पाषाण काल का प्रारम्भ

**प्रारम्भिक उपकरण**—प्राचीनतम मानव के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या तत्कालीन बनैले पशुओं से अपनी रक्षा करना और खाद्य-सामग्री एकत्र करना था। वह अन्य पशुओं से संख्या में कम था और शारीरिक शक्ति की दृष्टि से भी उनसे प्रतिद्वन्द्विता नही कर सकता था। परन्तु, जैसा कि हम देख चुके है, उसके हाथों की बनावट अन्य किसी भी प्राणी के हाथों की बनावट से उत्तम थी। वह इनकी सहायता से मिट्टी और पत्थर के ढेलों तथा वृक्षों की डालों को हथियार के रूप में प्रयुक्त करके अपनी शारीरिक शक्ति की कमी को पूरा कर सकता था। जिस प्रकार हम पेड़ से फल तोड़ने, नारियल जैसे कठोर फल को फोड़ने तथा किसी उद्धत पशु को भगाने के लिये छड़ी या पत्थर का ढेला उठा लेते हैं, उसी प्रकार आदि मानव भी वृक्षों से फल तोड़ने, कन्द मूल खोदकर निकालने तथा पशुओं को मार भगाने के लिये इनसे सहायता लेता था। लेकिन ये हथियार

---

इस पृष्ठ के ऊपर दिया गया चित्र परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल के एक कलाकार की कृति है। इस चित्र में कलाकार मैमथ के आकार को स्वाभाविक रूप में दिखाने में पूर्णतः सफल हुआ है। द्रष्टव्य है कि उसने मैमथ के दो पैरों का केवल संकेत दिया है, फिर भी चित्र की स्वाभाविकता में कमी नही आ पाई है। तुलना कीजिए आधुनिक कलाकार द्वारा बनाई गई मैमथ की आकृति से (चित्र ४, पृ० ११)।

बहुधा अपने नैसर्गिक रूप में होते थे, अत इनको मानव-निर्मित उपकरणों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। दूसरे, लकड़ी एक नश्वर द्रव्य है। इसके बने हुए इतने पुराने उपकरणों के नमूने आजकल प्राप्त नहीं हो सकते। इसलिए अगर प्राचीनतम मनुष्य ने वृक्षों की नैसर्गिक डालों को अधिक उपयोगी बनाने के लिये उनमे कुछ सुधार किया भी होगा तो उसे जानने का कोई उपाय नही है। लेकिन पत्थर के साथ यह बात नही है। यह एक बहुत ही मजबूत और टिकाऊ पदार्थ है। मनुष्य इसकी उपयोगिता से बहुत प्राचीन युग मे ही परिचित हो गया था। विशेषत छोटे-छोटे पशुओं का शिकार करने और मांस को खाल से पृथक करने मे उसे पत्थर के टुकड़े से बहुत सहायता मिलती थी। ऐसे पत्थर के टुकड़े उसे इधर-उधर पड़े मिल जाते थे। लेकिन जब प्रस्तर-खण्ड उसकी आवश्यकतानुसार नोकीले या धारदार नही होते थे तो उन्हें तोड़कर इच्छित रूप देना पडता था। एक बार प्रस्तर-खण्ड तोड़कर उसे इच्छित रूप देने का भाव आ जाने पर प्रगति सहज हो गई। उसको धीरे-धीरे यह समझ मे आ गया कि ऐसे औजारों से न केवल मांस को खाल से पृथक किया जा सकता है वरन् और बहुत से काम लिये जा सकते हैं।

चित्र ६ : उप: पाषाणकालीन उपकरण

**इयोलियों की समस्या**—लेकिन इसका आशय यह नही है कि मनुष्य को एकदम विविध प्रकार के सुन्दर हथियार बनाना आ गया था। इसके विपरीत उसको यह कला सीखने मे सहस्रो ही नही लाखों वर्ष लगे। उसके द्वारा बनाए गये प्राचीनतम हथियार देखने में बिलकुल नैसर्गिक पाषाण-खण्ड प्रतीत होते है। इनके बनाने मे किसी प्रकार के कौशल का प्रदर्शन नही किया गया है, केवल

हाथ में ठीक से पकड़ने या इच्छित नोक बनाने के लिये प्रस्तर-खण्ड का कुछ अंश तोड़ दिया गया है (चित्र ६)। इनमें और स्वाभाविक प्रस्तर-खण्ड में भेद करना बड़ा कठिन है। इसलिए पुरातत्त्ववेत्ताओं में पिछली शताब्दी के अन्तिम दशक से ही, जब ये उपकरण सर्वप्रथम प्रकाश में आये, यह विवाद चल रहा है कि इनको नैसर्गिक प्रस्तर-खण्ड माना जाय या मानव-निर्मित-औजार। आजकल अधिकांश विद्वान् इन्हे मानव-निर्मित मानते है। इन हथियारों की तिथि प्लीयोसीन युग के अन्तिम भाग से लेकर प्रथम अन्तर्हिमयुग तक मानी जाती है। पुरातत्त्व-वेत्ता इनको इयोलिथ या 'उप.कालीन पाषाण उपकरण' (Eolith या Dawn Stone) और जिस युग मे ये निर्मित हुए उसे 'उप.कालीन पाषाणयुग' (Eolithic Age) कहते हैं।

**उप.पाषाणकालीन मानव का जीवन**—उदयकालीन पाषाणयुग मे मनुष्य सम्भवतः छोटे-छोटे समूहों में रहता था। उसका समय भोजन की खोज करने और अन्य पशुओं से अपनी रक्षा करते रहने मे व्यतीत होता था। उसका भोजन साधारणतः जंगली बेर, फल, अखरोट, कन्दमूल और आसानी से सुलभ होने वाले कीट इत्यादि थे। वह सम्भवतः छोटे-छोटे पशुओ और पक्षियों का शिकार भी करता था। उसके सम्बन्धी, नर-वानर परिवार के अन्य सदस्य, शाकाहारी थे, लेकिन स्वयं उसने अपने अस्तित्व के किसी युग में माँसाहार प्रारम्भ कर दिया था। क्योकि पूर्व-पाषाणकाल के प्रारम्भ मे मनुष्य घोर माँसाहारी था, अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि पाषाणयुग के उदयकाल में भी वह माँस खाता होगा। अफ्रीकी-मानव के (ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्), जिसका सम्बन्ध इस युग से प्रतीत होता है, माँसाहारी होने के कुछ प्रमाण मिलते है। मांसाहार करने से मनुष्य को बहुत सुविधा हुई, क्योकि अब वह ऐसे स्थानों पर भी रह सकता था जहाँ फल-मूल न मिलते हों। वह आग का उपयोग जानता था या नही, यह कहना कठिन है।

४

# प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल

## मानव जातियाँ

**मानव के विकास का आदिस्थल**—हम देख चुके है कि मानव सभ्यता के इतिहास का प्रथम अध्याय लिखने वाले प्राणी पूर्णमानव (Homo sapiens) न होकर मानवसम (Hominid) थे। उन्होंने ही प्रारम्भिक और मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में, अर्थात अब से ५-६ लाख वर्ष पूर्व से लगभग ३०-३५ हज़ार वर्ष पूर्व तक, विश्व के विभिन्न प्रदेशों मे मानव सभ्यता की आधार शिला रखी। वस्तुतः मनुष्य के इतिहास का ९५% भाग 'मानवसम' प्राणियों का इतिहास है। परन्तु अभाग्यवश हम अभी तक निश्चित रूप से नहीं जान पाये हैं कि इन मानवसम प्राणियों का उद्‌भव सर्वप्रथम किस प्रदेश में हुआ। अब से कुछ वर्ष पहले तक जावा और पेकिंग से प्राप्त प्रस्तरित अस्थि-अवशेषों के आधार पर यह धारणा प्रचलित थी कि मनुष्य का उद्‌भव एशिया मे हुआ। तदनन्तर 'पिल्टडाउन मानव' के आधार पर यूरोप के पक्ष मे मत प्रकट किया जाने लगा। आजकल बहुत से विद्वान् अफ्रीका को मानव जाति का जन्म स्थान मानने लगे हैं, क्योंकि यहाँ पर प्राप्त 'मानवसम-एप' के अवशेषों को अब प्राचीनतम होने का श्रेय दिया जाता है।

**दक्षिणी अफ्रीका के 'मानवसम एप'**—सन् १९२४ ई० मे रोडेशिया (अफ्रीका) मे टांग्स नामक स्थान पर रैमन्ड ए० डार्ट नामक विद्वान् ने एक बालक के कपाल के प्लीस्टोमीनकालीन प्रस्तरित अवशेष खोज निकाले। यह खोपड़ी किसी ऐसे प्राणी की थी जो एप होते हुए भी बहुत सी बातों मे मनुष्य से मिलता-जुलता था। इस प्राणी को विद्वानों ने 'अफ्रीकी एप' अथवा 'ऑस्ट्रेलोपियेकस अफ्रीकेनम्' नाम दिया गया (चित्र १०)। सन् १९३५ ई० मे तथा उसके बाद इस जाति के प्राणियों के अन्य बहुत से अवशेष प्राप्त हुए। इनका अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि इस जीव के दाँत मनुष्य के समान थे। डा० ब्रुम का विचार है कि यह प्राणी सीधा खड़ा होकर चल सकता था और सम्भवत छड़ी और पत्थरों का शस्त्र रूप में प्रयोग करता था। सन् १९५५ में डार्ट को इन अस्थियों के पास कुछ प्रस्तर-खण्ड मिले जो उसके अनुसार 'ऑस्ट्रेलोपियेकस अफ्रीकेनम्' के औज़ार रहे होंगे। उसका मस्तिष्क-कोष ५०० घन सेन्टीमीटर से ७०० घन सेन्टीमीटर था, जबकि आधुनिक मनुष्य का मस्तिष्क-कोष साधारण १३५० घन सेन्टीमीटर होता है। सर आर्थर कीथ का कहना है

कि मानव के आदि पूर्वज का हम जो चित्र खींच सकते है, ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस् उससे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इस मत को १६५२ ई० में जोहन्सबर्ग के पास बार्तनान्स स्थान पर प्राप्त अस्थियों से बहुत बल मिला। इन में अधिकांश अस्थियां ऑस्ट्रेलोपिथेकस की हैं, लेकिन एक अस्थि उससे मिलती जुलती होने पर भी उच्चतर कोटि की है। इस अस्थि के प्राणी को 'टेलेन्थ्रोपस्' नाम दिया गया है। इन अस्थियों से अफ्रीका को मानव का उद्भव-स्थान माननेवालों के मत को बहुत बल मिला। लेकिन अधिकांश विद्वान् अभी यह स्वीकार नही करते कि 'ऑस्ट्रेलोपिथेकस' ही 'लुप्त कड़ी' हैं और समस्त मानव जाति उसकी सन्तान है। एक तो उसका मस्तिष्क-कोष बहुत छोटा था। दूसरे, उसके कपाल की संरचना मनुष्य के स्थान पर गोरिल्ला के कपाल की संरचना से अधिक मिलती है। इसलिए अधिक सम्भव यही लगता है कि ऑस्ट्रेलोपिथेकस मानव का आदि पूर्वज न होकर उस पूर्वज का कोई निकट सम्बन्धी था।
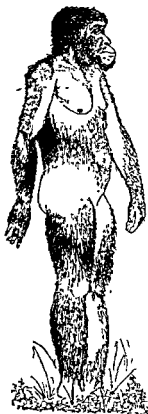
चित्र १०: ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्

**मध्य अफ्रीका के मानवसम प्राणी**—मध्य अफ्रीका से भी प्राचीन मानवों के कुछ प्रस्तरित-अवशेष प्राप्त हुये हैं। केनिया मे कनाम नामक स्थान के पास लीके नामक विद्वान् ने १६३२ ई० में कुछ अस्थियाँ प्राप्त की। ये अस्थियाँ प्रारम्भिक-प्लीस्टोसीन युग की है और विश्व की प्राचीनतम मानव अस्थियाँ कही जाती हैं। इन अस्थियों के जबड़े के निचले भाग से पता चलता है कि इस मानव की ठोड़ी आधुनिक मानव से मिलती-जुलती थी। इसी प्रकार अल्जीरिया में टरनीफाइन स्थान से तीन जबड़ों की अस्थियाँ मिली हैं। इन अस्थियों के मानव को एटलेन्थ्रोपस् (Atlanthropu.) कहा जाता है। इसकी शरीर-संरचना सम्भवतः पिथेकेन्थ्रोपस से मिलती-जुलती थी। यह मानव चैलियन-युग मे विचरण कर रहा था, क्योंकि इस युग के कुछ उपकरण इन अस्थियों के साथ प्राप्त हुए है।

**एशिया के 'मानवसम' प्राणी**—जिस प्रकार कुछ विद्वान् 'ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्' की अस्थियों के कारण अफ्रीका को मानव के विकास का आदि स्थल मानते हैं, उसी प्रकार ऑसबार्न तथा यजीन डुबॉय जैसे विद्वान् जावा-मानुष, 'पिथे-

केन्थ्रोपस मोइजोकरटेन्सिस्' तथा 'पेकिंग-मानव' के आधार पर एशिया को यह श्रेय प्रदान करते है।

जावा के प्राचीन प्रस्तरित-अवशेषो को खोज निकालने का श्रेय यूजीन डुबांय को है। उन्होने १८९१ ई० मे जावा के ट्रिनिल नामक स्थान से एक जघास्थि, कपाल और

चित्र ११ : जावा-मानव

दो दांत मिलने की घोषणा की। इन अस्थियों के मानव को 'जावा-मानव' (चित्र ११) कहा जाता है। क्योंकि यह प्राणी सीधा खड़ा होकर चल सकता था, इसलिए इसे **पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस्** भी कहते है। इस मानव का मस्तिष्क-कोष ९०० घन सेन्टीमीटर था—अर्थात चिम्पाजी के मस्तिष्क-कोष से बड़ा और पूर्णमानव के मस्तिष्क-कोष से छोटा। इससे स्पष्ट है कि वह ज्ञात एन्थ्रोपॉएड-एपो से अधिक विकसित था। उसका मस्तिष्क-कोष ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस् के मस्तिष्क-कोष से भी बड़ा था। वह दो पैर पर खड़ा हो सकता था, दौड सकता था और अपने हाथो का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग कर सकता था। फ्रेडरिक टिलनी और इलियट स्मिथ इत्यादि विद्वानो का विचार है कि यह मानव बोलना भी जानता था।

१९३६ ई० में कोर्वनिग्स्वाल्ड नामक विद्वान् को पूर्वीय जावा के माइजोकर्टो नामक स्थान पर एक मानव-शिशु की खोपड़ी मिली। वह स्तर, जिसमें यह खोपड़ी मिली, पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस् के पहले का है। इस खोपड़ी का मानव-शिशु भी एन्थ्रोपॉएड-एप से अधिक विकसित था। विद्वानो ने उसे **'पिथेकेन्थ्रोपस मोइजोकरटेन्सिस्'** नाम दिया है। जावा के इन दोनो मानवो का समय आठ लाख वर्ष पूर्व से पाँच लाख वर्ष पूर्व माना जाता है।

जावा-मानव के समकालीन अथवा उससे कुछ प्राचीनतर मानव के अवशेष चीन में पेकिंग नगर से ३७ मील दूर चोउ-कोउ-तिएन नाम की गुफाओं से प्राप्त हुये हैं। इनकी खोज १९२९ ई० में डब्लू० सी० पेई नामक चीनी विद्वान् ने की। १९३७ ई० तक इस मानव के चालीस अस्थि-पिंजर प्राप्त हुये जिनमें चौदह कपाल भी थे। इन अस्थियों के मानव को चीनी-मानव (Sinanthropus) कहते हैं (चित्र १२)। यह मानव जावा-मानव के सदृश खड़ा हो कर चलता था।

चित्र १२ : चीनी-मानव

इसलिए इसे 'पेकिंग का पियेकेन्थ्रोपस्' (Pithecanthropus Pekinensis) नामभी दिया गया है। पेकिंग-मानव बहुत सी बातों में जावा-मानव से मिलता-जुलता था, परन्तु उसका मस्तिष्क १०७५ घन सेन्टीमीटर था और वाणी का क्षेत्र जावा-मानव से अधिक विकसित था। उसकी अस्थियों के समीप बहुत से पशुओं की हड्डियां और अग्नि के चिह्न मिले हैं, जिनसे स्पष्ट है कि वह अग्नि के उपयोग से परिचित था। वह पाषाण उपकरणों का भी निश्चित रूप से प्रयोग करना जानता था।

**यूरोप के मानवसम प्राणी**—सन् १९५२ ई० तक कुछ विद्वानों का यह विश्वास था कि अफ्रीका और एशिया के समान यूरोप को भी मानव के विकास का आदि स्थल माना जा सकता है। इस विश्वास का आधार इगलैण्ड के ससेक्स प्रदेश के पिल्टडाउन (Piltdown) स्थान से प्राप्त प्रस्तरित-मानव-अवशेष थे। १९१२ ई० में चार्ल्स डॉसन नामक व्यक्ति ने यह घोषित किया कि उसे उपर्युक्त स्थान से ऐसे प्राणी के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिसका समय प्रारम्भिक-प्लीस्टोसीन

युग हो सकता है। परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि इस प्राणी के दाँत और मस्तिष्क-कोष आधुनिक मानव के समान थे परन्तु जबड़ा एप का था। अतः इसे एप और मानव के बीच की अवस्था का सूचक मान लिया गया। ब्रिटेन के नृतत्त्वशास्त्रियों ने बड़े गर्व से इसे मानव विकास की 'लुप्त कड़ी' बताया और इसका नाम **'उषः मानव'** या **इयोन्थ्रोपस डॉसोनी** (Eoanthropus Dowsoni) अथवा **'पिल्टडाउन-मानव'** (Piltdown Man) रखा, परन्तु अमरीका तथा यूरोप के बहुत से विद्वानों ने कपाल और जबड़े के बेमेलपन को देखकर इस मानव की यथार्थता में सन्देह प्रकट किया। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया यह सन्देह विश्वास में बदलता गया। अब यह निश्चित प्रतीत होने लगा कि ऐसे प्राणी के कपाल में पूर्णमानव का मस्तिष्क नहीं हो सकता जिसका जबड़ा एप का हो। अन्त में १९५२ ई० में फ्लोरीन-परीक्षण के द्वारा यह सिद्ध हो गया कि पिल्टडाउन मानव वास्तविकता न होकर वैज्ञानिक जालसाजी है। इसका मस्तिष्क ५ लाख वर्ष पुराना न होकर केवल पचास सहस्र वर्ष पुराना है और जबड़ा भी अपेक्षाकृत नवीन है। किसी जालसाज ने रासायनिक प्रक्रिया द्वारा इसे प्राचीनतम बना दिया था।

'पिल्टडाउन-मानव' सम्बन्धी रहस्य खुल जाने के बाद प्राचीन मानव का यूरोप से प्राप्त होने वाला ऐसा कोई अस्थि-अवशेष नहीं बचता जिसको जावा-मानव या पेकिंग-मानव सदृश प्राचीन माना जा सके। इसलिए कम-से-कम अपने ज्ञान की वर्तमान अवस्था में हम यूरोप को मनुष्य का आदि-स्थल नहीं मान सकते। इस समय यूरोप से प्राप्त प्रस्तरित अस्थि-अवशेषों में प्राचीनतम हीडलबर्ग-मानव का जबड़ा है जिसको डॉ० शूटन सैंक ने जर्मनी के हीडलबर्ग स्थान से १९०७ ई० में मौयर नाम की खान से प्राप्त किया। यह जबड़ा सम्भवतः द्वितीय हिमयुग अथवा द्वितीय अन्तर्हिमयुग के प्रारम्भ का है। इसका मानव एशिया के पियेकेन्थ्रोपस-मानव से मिलता जुलता परन्तु कुछ अधिक विकसित और पूर्णमानव के निकटतर था (चित्र ४)।

**यूरोप के 'प्रारम्भिक-पूर्णमानव'**—हीडलबर्ग-मानव के पश्चात् यूरोप में उन मानवों का युग आता है जिनके अवशेष स्वैन्सकोम्बे, स्टीनहीम और फोंतेशेवाद स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। (अ) **स्वैन्सकोम्बे** (Swanscombe) टेम्स नदी के दक्षिण में केन्ट प्रदेश में एक छोटा सा नगर है। यहाँ पर मार्स्टन नामक विद्वान् को सन् १९३५ ई० में द्वितीय अन्तर्हिमयुग के स्तरों में एक मानव कपाल प्राप्त हुआ। यह कपाल किसी ऐसी स्त्री का था जिसकी आयु बीस वर्ष रही होगी। इसका मस्तिष्क-कोष १३२५ से १३५० घन सेन्टीमीटर रहा होगा, जितना आजकल की स्त्रियों का होता है। विद्वानों का यह मत है कि इस युवती के कपाल में ऐसी कोई बात नहीं जिससे इसे 'पूर्णमानव' (Homo sapiens) वर्ग का न माना जा सके। (आ) **स्टीनहीम-मानव**

(Steinheim Man) के अवशेष जर्मनी में स्टूटगार्ड स्थान के समीप मिले हैं। यह द्वितीय अन्तर्हिमयुग के अन्तिम चरण से सम्बन्धित मालूम देते हैं। इन अवशेषों के मानव का मस्तिष्क-कोष केवल ११०० घन सेन्टीमीटर हैं, तथापि अन्य सभी बातों में इसे 'पूर्णमानव' कहा जा सकता है। (इ) **फोंतेशेवाद-मानव** (Fontechevade Man) के अवशेष १९४७ ई० में फ्रांस में इसी नाम की एक गुफा के निकट प्राप्त हुये है। इन तीनों स्थानो से प्राप्त मानव अवशेषों के सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि ये तिथि की दृष्टि से मध्य-पूर्व-पाषाणकाल की नियण्डर्थल जाति (चित्र १९) से, जिसका अध्ययन हम बाद मे करेंगे प्राचीनतर हैं परन्तु शारीरिक-संरचना की दृष्टि से यह नियण्डर्थल जाति की तुलना में आधुनिक मानव जातियों के अधिक निकट प्रतीत होते है। अतः हम इनको 'प्रारम्भिक-पूर्णमानव' (Early Homo sapiens) कह सकते हैं।

उपकरण

**प्रारम्भिक हथियार**—प्रारम्भिक प्लीस्टोसीन युग के अन्त अथवा द्वितीय हिमयुग के प्रारम्भ से ऐसे पाषाण उपकरण मिलने लगते हैं जिनके मानव द्वारा

मानचित्र २
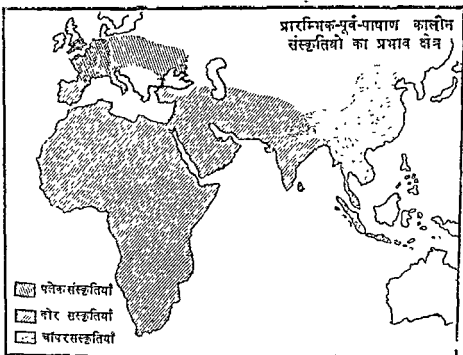
निर्मित होने मे सन्देह नही किया जा सकता। इन औज़ारों में प्राचीनतम स्थान 'मुष्टि छुरे' (Coup-de-poing या Handaxe) को प्राप्त है। यह औजार सामने की ओर नोकीला और अगल-बगल धारदार होता था। पीछे की ओर इसे गोल रखा जाता था जिससे हाथ मे पकडने मे आसानी हो (चित्र १४)। प्रारम्भ मे इसी एक औज़ार से मनुष्य हथौडे, छुरे, कुल्हाड़ी, छेनी, बर्मे, भाले, आरी और खुर्चन-यन्त्र (Scraper) का काम ले लेता था। इसी से वह पशुओं का शिकार करता था, खाल को खुरचकर साफ करता या तथा कन्द-मूल खोदकर निकालता था। लेकिन ज्यों-ज्यों मनुष्य का अनुभव बढता गया, वह विभिन्न प्रकार के कार्य करने के लिए विभिन्न प्रकार के औजार बनाने लगा। इन औज़ारो को तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है—आन्तरिक या 'कोर' (Core) हथियार, फलक या 'फ्लेक' (Flake) हथियार तथा चॉपर (Chopper) हथियार (मानचित्र २)।

**आन्तरिक उपकरण**—आन्तरिक या कोर (Core) हथियार बनाने के लिए एक बडे प्रस्तर-खण्ड से कुछ छिलकों या फलकों को इस प्रकार अलग कर दिया जाता था कि बीच का भाग, जिसे आन्तरिक या गूदा (Core) कहा जा सकता है एक हथियार के रूप मे बच जाय। इस प्रकार के प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाण युगीन हथियार अफ्रीका, सीरिया, पेलेस्टाइन, पश्चिमी यूरोप (स्पेन, फ्रांस, और इगलैण्ड) और दक्षिणी भारत मे मिले है।

विकास की दृष्टि से प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल के 'कोर' हथियारों को तीन 'संस्कृतियों'[1] मे बाँटा जाता है। सर्वप्रथम इनकी खोज और अध्ययन फ्रांस मे हुआ इसलिए इनका नामकरण वही के स्थानो के नाम पर किया गया है।

(अ) **प्रारम्भिक-चैलियन संस्कृति** (Early Chellean Culture)—इसको यह नाम फ्रास मे पेरिस से ८ मील दूर स्थित चैलेस नामक स्थान से प्राप्त हथियारो के कारण दिया गया है। इसका तात्पर्य यह नही है कि इस सस्कृति का जन्म-स्थान

१. पुरातत्त्व मे 'संस्कृति' (Culture) और 'उद्योग' (Industry) शब्दों का बहुधा प्रयोग किया जाता है। इस संदर्भ मे 'सस्कृति' का अर्थ उस मानव-समूह के लिए होता है जिसके उपकरण, अस्त्र-शस्त्र और मृद्भाण्ड इत्यादि एक से हों। यह आवश्यक नही है कि वह मानव-समूह एक ही जाति का हो। संस्कृतियों के नाम बहुधा उन स्थानों पर रखे जाते है जहाँ वे उपकरण पहली बार मिलें; जैसे चैलेस के नाम पर चैलियन, हलफ के नाम पर हलफियन इत्यादि। इसके विपरीत उद्योग (Industry) किसी एक स्थान पर एक मानव-समूह द्वारा निर्मित उपकरणों को कहते है। उदाहरण के लिए सेंट अचूल से प्राप्त उपकरण 'अचूलियन-उद्योग' कहलायेंगे और होक्स्ने से प्राप्त उपकरण 'होक्सने-उद्योग'; परन्तु इन दोनों स्थानों के उद्योग एक ही संस्कृति—अचूलियन—के अन्तर्गत आयेंगे।

भी फांस ही है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी उत्पत्ति मध्य अफ्रीका में हुई। कालान्तर में यह पश्चिमी यूरोप और दक्षिणी एशिया में फैली। इस संस्कृति के मुष्टिछुरे (Coup-de-poing) एक दम सादे हैं। इनके बनाने में कोई कौशल प्रकट नहीं किया गया है। इनमें बहुत से तो इयोलियों के समान नैसर्गिक पाषाण-खण्ड मालूम होते हैं। इनकी तिथि द्वितीय हिमयुग के लगभग रखी जा सकती है। सम्भवतः इस समय पृथिवी पर पिथेकेन्थ्रोपस मानव विचरण कर रहा था।

चित्र १३ : चैलियन-मुष्टिछुरे

(आ) चैलियन या एब्बेविलियन संस्कृति (Chellean or Abbevillian Culture) प्रारम्भिक-चैलियन युग के कुछ बाद में चैलियन या एब्वेविलियन संस्कृति का काल आता है। यह काल द्वितीय अन्तर्हिमयुग के प्रारम्भ तक चलता है। इस युग में पूर्व-चैलियन मुष्टिछुरे को दोनों तरफ से फलक उतार कर अधिक उपयोगी बनाया जाने लगा। इस समय पृथिवी पर सम्भवतः पिथेकेन्थ्रोपस-मानव के वंशज तथा हीडलवर्ग मानव विचरण कर रहे थे।

(इ) अचूलियन संस्कृति (Acheulian Culture)—इस संस्कृति का समय द्वितीय अन्तर्हिमयुग के मध्य से तृतीय अन्तर्हिमयुग के अन्त तक चलता है। इस काल के उपकरण पूर्वगामी युग के उपकरणों से अधिक अच्छे और नोकीले हैं। अब इन की आकृति बादाम से मिलती-जुलती हो जाती है। आन्तरिक से अलग हुए फलकों को भी अचूलियन मानव व्यर्थ नहीं जाने देते थे। वे उनके छोटे-छोटे उपकरण बना लेते थे। लेकिन फिर भी मुष्टिछुरा उनका प्रमुख औजार था। यह उपकरण यूरोप, ग्रीनलैण्ड, अमेरिका, कनाडा, मेक्सिको, पश्चिमी एशिया, भारत और चीन से प्राप्त होता है। इस युग में पृथिवी पर उन मानवों का आधिपत्य था जिनके अवशेष स्वैन्सकोम्बे, स्टीनहीम, तथा फोंतेशेवाद इत्यादि स्थानों पर प्राप्त होते हैं।
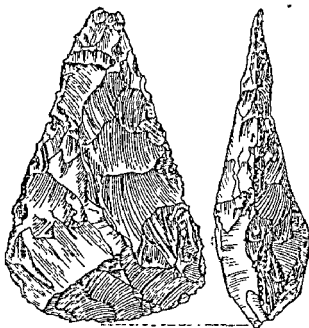
चित्र १४ : अचूलियन मुष्टिछुरा

फलक उपकरण—दूसरे प्रकार के हथियार फलक या फ्लेक हथियार कहलाते हैं। इनको बनाने मे 'कोर' या आन्तरिक को छोड दिया जाता था और उसके स्थान पर उससे उतारे फलकों का प्रयोग किया जाता था। फ्लेक हथियार भी बहुत प्रकार के होते थे। ये विशेषतः यूरोप और उत्तरी यूरेशिया में मिलते हैं (मान चित्र २)। क्योंकि फलक 'कोर' से ही उतारे जाते थे, इससे स्पष्ट है कि फलक हथियारो का निर्माण आन्तरिक हथियारों के साथ बहुत प्राचीनकाल मे ही प्रारम्भ हो चुका होगा। विकास की दृष्टि से फलक हथियारों को निम्नलिखित संस्कृतियों मे बांटा जा सकता है:—
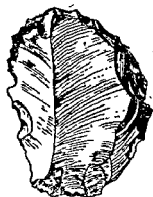
चित्र १५: क्लेक्टोनियन फलक

(अ) क्लेक्टोनियन संस्कृति (Clactonian Culture)—यूरोप में इस संस्कृति का इतिहास द्वितीय हिमयुग से प्रारम्भ होता है और द्वितीय अन्तर्हिमयुग में अचूलियन संस्कृति के पूर्वार्द्ध तक चलता है। यद्यपि स्वैन्सकोम्बे जैसे स्थानों पर प्राप्त अवशेषो मे केवल क्लेक्टोनियन हथियार ही मिलते है तथापि अचूलियन संस्कृति

के निर्माताओं के पश्चिमी यूरोप में बस जाने पर दोनों संस्कृतियाँ परस्पर मिल जाती है। फिर भी पूर्वी और मध्य यूरोप मे क्लेक्टोनियन संस्कृति का प्रभुत्व बना रहता है (चित्र १५)।

(आ) लेवालुआजियन संस्कृति (Levalloisian Culture)—इस संस्कृति में औज़ार (चित्र १६) बनाने के पहले पाषाण-खण्ड में औज़ार की आकृति को खोद लिया जाता था और फिर उसे तोड़ कर अलग कर दिया जाता था। इस विधि का आविष्कार सम्भवतः कई प्रदेशों में स्वतन्त्र रूप से हुआ। इसका काल तृतीय हिमयुग के प्रारम्भ से तृतीय अन्तर्हिमयुग के अन्त तक माना जाता है।

चित्र १६ : लेवालुआजियनफलक

चॉपर उपकरण—जिस समय यूरोप, अफ्रीका और एशिया के कुछ भागो मे कोर और फ्लेक संस्कृतियाँ फलफूल रही थीं, उत्तर-पश्चिमी भारत, दक्षिण-पूर्वी तथा पूर्वी एशिया में एक तीसरे प्रकार की संस्कृति लोकप्रिय थी (मानचित्र २), इसे चॉपर (Chopper) संस्कृति कहते है। चॉपर हथियार मुष्टि-छुरे से मिलते-जुलते होने पर भी कुछ भिन्न होते थे। इनमें साधारणतः एक ओर ही धार बनाई जाती थी। अधिकांश चॉपर फलकों से बनाए जाते थे। कभी-कभी कोर का प्रयोग भी किया जाता था। यह हथियार विशेषतः उत्तर-पश्चिम भारत की सोअन, (चित्र १७) वर्मा की अन्याथियन, जावा की पतजित-नियन (जावा-मानव की समकालीन?) मलाया की तम्पनियन और चीन की चोउ-कोउ-तियनियन संस्कृतियो में मिलता है। अफ्रीका की प्राक्-चैलियन युग की स्टैलेन-वाश (Stellenbosch) प्रारम्भिक आल्डोवान (Early Oldowan) तथा काफुआन (Kafuan) संस्कृतियों में भी ये उपकरण मिलते हैं।
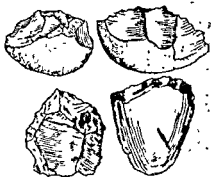
चित्र १७ : चॉपर उपकरण

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाण काल में तीन प्रमुख सांस्कृतिक धाराएँ समानान्तर रूप से प्रवाहित हो रही थीं। एक चैलियन-अश-लियन धारा जिसमे आन्तरिक उपकरणों की प्रधानता थी, दूसरी क्लेक्टोनियन-लेवालुआजियन, जिसमे फलक उपकरणों की प्रधानता थी और तीसरी सोअन-अन्या-

थियन-पतजितनियन-चोउ-कोऊ-तिनियन धारा, जिसमे विशेषतः चॉपर उपकरण बनाये जाते थे। फलक उपकरण हिम जलवायु मे अधिक उपयोगी सिद्ध होते थे।
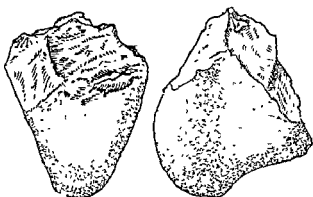
चित्र १८ : ओल्डोवान-उपकरण

इसलिए यूरोप में अन्तर्हिमयुगों में आन्तरिक उपकरणों की लोकप्रियता अधिक हो जाती थी और हिमयुगों मे फलक उपकरणों की।

## दैनिक-जीवन

प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकालीन मानव के जीवन पर प्रकाश डालने वाले बहुत कम तथ्य ज्ञात है। यह लगभग निश्चित है कि इस काल का मानव खुले आकाश के नीचे रहता था और नदियों तथा झीलों के किनारे विचरण करता था। गुफाओं से उसे कोई मोह नहीं था। केवल पेकिंग-मानव इस विषय में अपवाद मालूम देता है। सम्भवतः आग से भी उसका परिचय नही था। अफ्रीका में मनुष्य द्वारा अग्नि के प्रयोग का प्राचीनतम साक्ष्य अचूलियन युग के अन्त का है। लेकिन पेकिंग-मानव इस क्षेत्र मे भी अपवाद है। वह निश्चित रूप से अग्नि के कुछ उपयोग जानता था। अचूलियन मानव की आजीविका का प्रमुख स्रोत सम्भवतः शिकार था। उसके मुख्य हथियार लकडी की साधारण बर्छियाँ थी। किसी-किसी प्रदेश में बड़े पशुओ का शिकार करने के लिए गड्ढे भी खोदे जाते थे, जिनमें पशु गिरकर फँस जाते थे। इस काल के मानवो द्वारा शिकार किये गये पशुओं की अस्थियाँ इटली और स्पेन में प्रचुरता से प्राप्त होती हैं। इनसे ज्ञात होता है कि वे जंगली वृषभ, अश्व और हाथी के शिकार मे विशेष रूप से रुचि लेते थे।

## ५

# मध्य-पूर्व-पाषाणकाल

### नियण्डर्थल मानव

मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में यूरोप मे नियण्डर्थल जाति का आधिपत्य स्थापित हो जाता है। नियण्डर्थल-मानव के अवशेष सर्वप्रथम १८४८ ई० में जिब्राल्टर की एक चट्टान के नीचे मिले। उस समय इनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। तत्पश्चात् १८५६ ई० में जर्मनी के डुसेलडोर्फ प्रदेश के नियण्डर्थल स्थान पर एक अस्थि-पिंजर के कुछ अंश मिले। इस स्थान के नाम पर इन अस्थियों के मानव को **नियण्डर्थल** कहा गया (चित्र १६)। १६ वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप के बेल्जियम, फ्रांस, स्पेन, इटली, यूगोस्लाविया और क्रीमिया इत्यादि देशों से इस मानव के अनेक अस्थि-पिंजर खोज निकाले गये। इनसे स्पष्ट हो गया कि नियण्डर्थल मानव का मानव सभ्यता के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योग रहा है।

चित्र १६ : नियण्डर्थल-मानव

नियण्डर्थल मानव की शरीर-संरचना आधुनिक 'पूर्णमानव' से बहुत कुछ मिलती-जुलती होने पर भी कुछ बातो में भिन्न थी। यह मानव कद मे छोटा—केवल ५ फुट से ५ फुट ४ इंच तक—होता था। उसका सिर बड़ा, नाक चौड़ी

उसका अंगूठा मनुष्य के अँगूठे के समान लचीला नहीं होता था। वह न तो गर्दन सीधी करके खड़ा हो सकता था और न सत्वर गति से चल सकता था। उसका मस्तिष्क-कोष 'पूर्ण मानव' के मस्तिष्क-कोष से कुछ बड़ा (१४५० घन सेन्टीमीटर) परन्तु निम्नकोटि का था। उसके मस्तिष्क की देखने और छूने से सम्बन्धित शक्तियाँ कुछ कमजोर थीं। वह सम्भवतः बोल सकता था, परन्तु भाषा का विकास नहीं कर पाया था। यद्यपि एशले मोंटेगु जैसे नृवंशशास्त्रियों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि नियण्डर्थल मानव पूर्ण मानवों से मिलता-जुलता था तथापि अधिकांश विद्वान् यह विश्वास करते हैं कि नियण्डर्थलों में उपर्युक्त शारीरिक दोष थे।
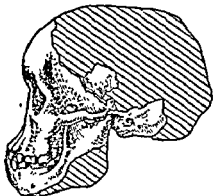
१—ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस् का कपाल
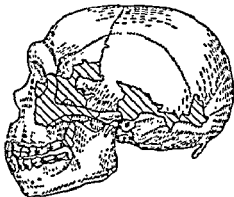
२—नियण्डर्थल-मानव का कपाल
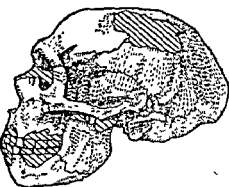
३—कार्मेल पर्वत से प्राप्त नियण्डर्थलसम मानव का कपाल
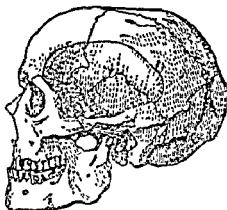
४—क्रोमान्यों-मानव का कपाल

चित्र २०

*नियण्डर्थलों का मानव-परिवार में स्थान*—नियण्डर्थल-मानव का मानव-परिवार में क्या स्थान है, इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नहीं है। अब से कुछ

वर्ष पूर्व तक विद्वानों की यह धारणा थी कि नियण्डर्थल जाति 'मानव' वर्ग (Homo) की होने पर भी 'पूर्णमानव' वर्ग (Homo Sapiens) से सम्बन्धित नहीं है। उनके अनुसार यह एक अर्द्ध-मानव जाति थी जिसको परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल के 'पूर्ण-मानवों' ने पराजित करके यूरोप पर अधिकार स्थापित किया। लेकिन हम देख चुके हैं कि अब यूरोप में ही प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल के ऐसे प्रस्तरित अवशेष स्वॅन्सकोम्ब, स्टीनहीम और फोंतेशेवाद इत्यादि स्थानों से प्राप्त हो गये हैं जिनको 'पूर्णमानवों' के अवशेष न मानने का कोई कारण नहीं है। इसलिए अब यह कह सकना लगभग असम्भव हो गया है कि 'पूर्णमानव' जाति का यूरोप में आगमन नियण्डर्थल जाति के संहारक के रूप में हुआ। अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि हिमयुगों के प्रारम्भिक काल में 'पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस' मानवों से मिलते-जुलते मानव यूरोप में आकर बस गये थे। इसका प्रमाण हीडलबर्ग-मानव के अवशेष हैं। इन्हीं मानवों से प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल में 'पूर्ण-मानवों' का विकास हुआ। लेकिन मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में, जब यूरोप में चौथी बार भयानक हिमपात हुआ, 'पूर्णमानवों' की एक शाखा में, जिसे हम नियण्डर्थल कहते हैं, अकेले पड़ जाने के कारण कुछ शारीरिक परिवर्तन हो गये, जिनके कारण यह जाति 'पूर्णमानवों' से कुछ भिन्न दिखाई देने लगी। इस दृष्टि से देखने पर नियण्डर्थल जाति मूलत. 'पूर्णमानव-परिवार' से सम्बन्धित मानी जाएगी।

## उपकरण

**मूस्टेरियन-उपकरण**—नियण्डर्थल जाति के पाषाण हथियार मूस्टेरियन-संस्कृति (Mousterian Culture) के अन्तर्गत आते हैं (चित्र २१)। ये हथियार फ्रांस के
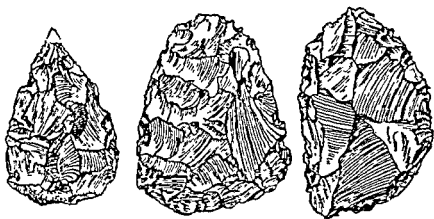
चित्र २१ : मूस्टेरियन-उपकरण

ल-मूस्टियर स्थान में प्रचुर मात्रा में पाये गये हैं इसलिए इन्हें 'मूस्टेरियन' नाम दिया गया है। मूस्टेरियन हथियार फ्रान्स के अतिरिक्त यूरोप के अन्य बहुत से देशों, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका में भी मिले हैं। ये मुख्यतः फलक हथियार हैं। मुष्टिछुरे का, पुराने ढंग का होने के कारण, बहुत कम प्रयोग हुआ है। मूस्टेरियन हथियारों का विकास विशेषत क्लेक्टोनियन हथियारों से हुआ पर इन पर अश्यूलियन और लेवालुआजियन परम्पराओं का प्रभाव भी सर्वथा स्पष्ट है। ये प्राचीन फलक हथियारों से अधिक हल्के, तेज और सुन्दर हैं। ये कई शताब्दियों के अनुभवों का परिणाम मालूम होते हैं। इन उपकरणों में पार्श्व-खुरचन-यन्त्र (Side Scraper), पत्थर का रन्दा, आरा, चाकू, सुआ, भाले की नोक,तथा बर्छी की नोक इत्यादि सम्मिलित हैं। नियण्डर्थल-मानव अस्थियों के नैसर्गिक टुकड़ों को भी हथियार के रूप में प्रयुक्त करते थे। परन्तु उन्हें तराशकर 'मानव निर्मित हथियार' का रूप देना नहीं जानते थे।

## नियण्डर्थल-संस्कृति

**नियण्डर्थल युग की तिथि**—इस संस्कृति का काल तृतीय अन्तर्हिमयुग के अन्तिम चरण से प्रारम्भ होता है। उस समय यूरोप का जलवायु उष्ण था इसलिए उस काल के नियण्डर्थलों का जीवन अश्यूलियनों के जीवन से मिलता-जुलता था। लेकिन चतुर्थ हिमयुग में, जब यूरोप में भयंकर शीत पड रहा था, नियण्डर्थलों का जीवन एकदम बदल जाता है। यही काल नियण्डर्थल संस्कृति का प्रमुख काल है।

**गुफाओं का प्रयोग और अग्नि पर नियन्त्रण**—चतुर्थ हिमयुग के शीत से बचने के लिए नियण्डर्थलों ने गुफाओं में रहना प्रारम्भ किया। उनकी पूर्वगामी जितनी मानव जातियों का अध्ययन हमने किया है उनमें पेकिंग-मानव को छोड़कर अन्य किसी के गुफाओं में रहने का प्रमाण नहीं मिलता। लेकिन नियण्डर्थलों ने जहाँ भी सम्भव हो सका, गुफाओं को अपना निवास स्थान बनाया। उनके पास जलपात्र नहीं थे इसलिये उन्होंने ऐसी गुफाओं को ही अपनाया जो झीलों और सरिताओं के पास पड़ती थी और जहाँ पाषाण खण्ड भी सुविधा से मिल जाते थे। गुफाओं में रहने की परम्परा परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल में भी चलती रही (पृ० ५२), इसलिये नियण्डर्थल युग को कभी-कभी प्रारम्भिक-गुहा-युग और परवर्ती पूर्व-पाषाण काल को परवर्ती गुहा-युग भी कहा जाता है। लेकिन नियण्डर्थल गुफाओं पर अनायास ही अधिकार न कर सके। इस समय मैमथ, भालू और गैंडे जैसे भयंकर पशु भी शीत से बचने के लिए गुफाओं पर अधिकार करने का प्रयास कर रहे थे। उनको गुफाओं से दूर रखने में नियण्डर्थलों को अग्नि से बहुत सहायता मिली। नियण्डर्थल निश्चित रूप से अग्नि से परिचित थे लेकिन वे स्वयं आग जलाना

जानते थे अथवा नहीं यह कहना कठिन है। अधिकांश विद्वानों का विचार है कि वे चकमक पत्थर से आग जलाना जानते थे। अग्नि पर नियन्त्रण कर लेना नियण्डर्थलों की बहुत बड़ी सफलता थी। आग से जंगली पशु डरते थे इसलिये गुफाओं के द्वार पर इसे प्रज्जवलित रखकर उन्हें दूर रखा जा सकता था। वे अपने आश्रय स्थान में निर्भर होकर सो सकते थे। इसकी सहायता से वे चतुर्थ हिमयुग के भयंकर शीत से बच सकते थे और अंधेरे स्थानो को प्रकाशित कर सकते थे। अग्नि की सहायता से उनका भोजन अधिक सुस्वाद होने लगा। सैकड़ों पदार्थ जो पकाये बिना नही खाये जा सकते थे, अब उनके भोजन में सम्मिलित हो गये। इसके अतिरिक्त यह भी स्मरण रखना चाहिये कि अग्नि पर ही भविष्य मे सभ्यता की प्रगति निर्भर थी। अग्नि पर नियन्त्रण किये बिना न तो मनुष्य धातुओं को पिघला सकता था और न उनसे उपकरण बना सकता था। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि नियण्डर्थलों ने अग्नि पर नियन्त्रण स्थापित करके मानव-सभ्यता की प्रगति में महत्त्वपूर्ण योग दिया।

**भोजन और शिकार**—नियण्डर्थल-मानव पूर्णरूपेण प्रकृति-जीवी थे। वे अभी तक कृषि से अपरिचित थे और पशुपालन करके अतिरिक्त खाद्य-सामग्री, जैसे दूध और मांस इत्यादि का 'उत्पादन' करना नही जानते थे। उनका भोजन या तो जंगली फल थे जिनको वे तोड़कर एकत्र कर सकते थे, अथवा वे पशु थे जिनका वे अकेले या सामूहिक रूप से शिकार करते थे। विभिन्न प्रकार के जंगली बेर, करोंदे, शाक, फल, अण्डे, मधु, केंचुएँ, कीड़े-मकोड़े तथा मेंढक इत्यादि उनका साधारण भोजन थे। नदियों और तालाबों से, सम्भवतः हाथ से, वे मछली पकड़ लेते थे। समुद्र के किनारे उन्हें घोंघे और समुद्री घास खाने को मिल जाती थी। छोटी-छोटी चिड़ियों को सम्भवतः वे पत्थर मारकर गिरा लेते थे। मांसाहार के लिए वे मुख्यतः छोटे-छोटे पशुओं पर दृष्टि रखते थे। उनके नरभक्षी होने के भी कुछ संकेत मिलते है। बडे पशुओ का शिकार वे सम्मिलित रूप से ही करते थे क्योंकि उनका अकेले शिकार करने मे स्वयं शिकार हो जाने का भय रहता था। यह युग रीछ, गैंडे और मैमथ आदि भयकर पशुओ का था। नियण्डर्थलों के पास केवल पाषाण के हथियार थे, इसलिये सम्मिलित रूप से घेरे बिना उनका शिकार नही किया जा सकता था। जब कोई विशालकाय पशु बीमार या घायल अवस्था में मिल जाता था तो वे उसे पानी या बर्फ में फँसाकर आसानी से मार डालते थे। मृत पशुओं के लघु अंङ्गों की अस्थियाँ नियण्डर्थलों की गुफाओं मे प्रचुर मात्रा में मिलती हैं, परन्तु पसली और रीढ़ की हड्डियाँ बहुत कम प्राप्य है। इससे ज्ञात होता है कि वे विशालकाय पशुओं के धड़ को वही खा लेते थे जहाँ उनका शिकार करते थे और शेष भाग को काटकर गुफाओ मे ले आते थे।

शिकार में मारे गये पशुओं से नियण्डर्थलों को मांस के साथ खाल भी मिल जाती थी। खाल के आन्तरिक भाग को वे छीलकर ठीक कर लेते थे। इसके लिए वे *अपने पाषाण औज़ारों का प्रयोग करते थे। साफ करने के बाद उसे धूप में* सुखाकर ओढ़ने, बिछाने और सम्भवत: पहिनने के काम में लाते थे।

**सामाजिक जीवन**—नियण्डर्थल मानव विशालकाय पशुओं का शिकार करता था, इससे स्पष्ट है कि वह समूहों में रहता होगा। अगर आधुनिक आदिम जातियों के सामाजिक संगठन के आधार पर कुछ कल्पना की जाय तो कहा जा सकता है कि प्रत्येक समूह का एक मुखिया होता था। समूह में अधिक संख्या स्त्रियों और बच्चों की होती थी। जो पुरुष मुखिया की आज्ञा नहीं मानते थे उनको समूह से निकाल दिया जाता था। समूह के पुरुष-सदस्य दिन भर भोजन जुटाते थे और रात में एक स्थान पर इकट्ठे हो जाते थे जिससे वनैले पशुओं से अपनी रक्षा कर सकें। स्त्रियाँ और बच्चे दिन भर पाषाण-खण्ड एकत्र करते थे। रात में समूह का मुखिया और अन्य पुरुष मिलकर हथियार बनाते थे और बच्चे उनके पास बैठकर यह कला सीखते थे। जब समूह का कोई लड़का व्यस्क हो जाता था तो वह मुखिया के पद को छीनने का प्रयास करता था। अगर मुखिया इस संघर्ष में जीतता था तो वह उस युवक को समूह से निकाल देता था और यदि युवक जीतता था तो वह मुखिया बन जाता था और समूह के सब सदस्यों पर उसका अधिकार हो जाता था।

**मृतक-संस्कार**—अपने अस्तित्व के अन्तिम चरण में नियण्डर्थलों ने अपने मृतकों को कुछ आदर, और सम्मान के साथ दफनाना प्रारम्भ कर दिया था। वे उनको विशेष रूप से खोदी गई समाधियों में गाड़ते थे। बहुधा ये समाधियाँ रहने की गुफाओं में उस स्थान के समीप बनाई जाती थीं जहाँ वे आग जलाते थे। सम्भवत: वे इस तथ्य से परिचित थे कि जीवित शरीर में उष्णता तथा मृत शरीर में ठण्डक होती है। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला होगा कि मृत शरीर को अग्नि के समीप दफनाने से व्यक्ति पुनर्जीवित हो सकता है। वे अपने मृतकों को विशेष मुद्राओं में लिटाते थे और उनके साथ औज़ार और खाद्य-सामग्री रख *देते थे। एक स्थान पर एक नियण्डर्थल युवक दाहिनी कलाई पर सिर रखकर सोने* की मुद्रा में दफनाया गया मिलता है। उसकी कलाई पाषाण-हथियारों के ढेर पर, जिनका तकिया सा बना है, रखी हुई है। उसके सिर के पास एक पाषाण की कुल्हाड़ी और आसपास बहुत सी अस्थियाँ बिखरी हुई हैं। सम्भवत: उनका विचार था कि मरने के बाद भी व्यक्ति का अस्तित्व किसी-न-किसी रूप में बना रहता है और उस समय भी उसे इस जीवन में प्रयुक्त होने वाली खाद्य-सामग्री और

हथियारों की आवश्यकता पड़ती है। इससे स्पष्ट है कि बर्बर निण्यडर्थल ने मृत्यु और जीवन की समस्या पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था।

अन्त

**नियण्डर्थलों का अन्त**—नियण्डर्थल जाति का अन्त अब से तीस-पैंतीस सहस्र वर्ष पूर्व उस जाति ने किया जिसे नृवंशशास्त्री 'पूर्णमानव' या 'मेधावी मानव' (True man अथवा Homo sapiers)कहते है। हम पहले ही देख चुके है कि सम्भवतः 'पूर्णमानव' जाति का उद्भव यूरोप में प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल मे ही हो चुका था और स्वयं नियण्डर्थल जाति मूलतः 'पूर्णमानव' जाति की ही एक शाखा थी। इस तथ्य के प्रकाश मे आने के पूर्व बहुत से विद्वान् यह मानते थे कि 'पूर्ण-मानव' जाति और नियण्डर्थल जाति में शारीरिक और मानसिक भिन्नताएँ इतनी अधिक थी कि उनका एक दूसरे के सम्पर्क मे आना असम्भव था। 'पूर्ण-मानव' सम्भवतः नियण्डर्थलो को अपने से भिन्न मानते थे और उनके छोटे कद, बेढगी चाल, सख्त गर्दन और कुरूप आकृति के कारण उनसे घृणा करते थे। अतएव दोनों जातियों में रक्त मिश्रण नही हो पाया और नियण्डर्थल जाति युद्ध में पराजित हो जाने के बाद स्वयं ही लुप्त हो गई। लेकिन पिछले कुछ दशकों मे पेलेस्टाइन और मध्य एशिया मे ऐसे मानवों के अस्थि-अवशेष प्राप्त हुये है जो निश्चित रूप से नियण्डर्थल और 'पूर्णमानव' जाति के बीच की अवस्था का सूचक है। पेलेस्टाइन मे **गैलिली समुद्र के पास** एक गुफा मे प्राप्त कपाल और **कार्मेल पर्वत की** उपत्यका में तीन गुफाओं में प्राप्त दस अस्थि-पिंजर निश्चित रूप से **नियण्डर्थल** के बजाय नियण्डर्थलसम (Neanderthaloid) प्रतीत होते है। इसी प्रकार १६३८ मे रूस के उजबेकिस्तान गणतन्त्र मे एक नियण्डर्थलसम बालक के अवशेष प्राप्त हुये। ये अवशेष सम्मिलित रूप से **'शुल-उपशाखा'** के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें नियण्डर्थलो और 'पूर्णमानवो' की शारीरिक विशेषताएँ मिले-जुले रूप मे मिलती है। इससे स्पष्ट है कि नियण्डर्थल जाति और 'पूर्णमानवों' के रक्त मिश्रण की सम्भावना को एक दम विस्मृत नही किया जा सकता।

**नियण्डर्थल संस्कृति के अवशेष—तस्मानिया**—नियण्डर्थल जाति का रक्त पूर्ण-मानवों मे हो या न हो, कम-से-कम उसकी सस्कृति अभी तक एकदम विलुप्त नही हो पायी है। आधुनिक काल मे जब डच व्यापारियों ने तस्मानिया की खोज की तो उन्हें वहाँ एक ऐसी जाति मिली जिसका रहन-सहन नियण्डर्थलों के रहन-सहन से मिलता-जुलता था। यह जाति **शारीरिक-संरचना** की दृष्टि से 'पूर्णमानव' वर्ग की थी। यह तथ्य इस बात का एक और प्रमाण है कि नियण्डर्थल जाति मूलतः 'पूर्णमानव' वर्ग की सदस्य थी। केवल मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में यूरोप

■ आदि मानव
● नियण्डर्थल मानव
▲ पूर्ण मानव

मानचित्र २

आदि मानव प्रस्तरित-अवशेषों के प्राप्ति-स्थल

हथियारों की आवश्यकता पड़ती है। इससे स्पष्ट है कि बर्बर निण्यडर्थल ने मृत्यु और जीवन की समस्या पर विचार करना प्रारम्भ कर दिया था।

अन्त

**नियण्डर्थलों का अन्त**—नियण्डर्थल जाति का अन्त अब से तीस-पैंतीस सहस्र वर्ष पूर्व उस जाति ने किया जिसे नृवंशशास्त्री 'पूर्णमानव' या 'मेधावी मानव' (True man अथवा Homo sapiens) कहते हैं। हम पहले ही देख चुके है कि सम्भवतः 'पूर्णमानव' जाति का उद्‌भव यूरोप में प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल मे ही हो चुका था और स्वयं नियण्डर्थल जाति मूलतः 'पूर्णमानव' जाति की ही एक शाखा थी। इस तथ्य के प्रकाश में आने के पूर्व बहुत से विद्वान् यह मानते थे कि 'पूर्ण-मानव' जाति और नियण्डर्थल जाति मे शारीरिक और मानसिक भिन्नताएँ इतनी अधिक थी कि उनका एक दूसरे के सम्पर्क मे आना असम्भव था। 'पूर्ण-मानव' सम्भवतः नियण्डर्थलों को अपने से भिन्न मानते थे और उनके छोटे क़द, बेढंगी चाल, सख्त गर्दन और कुरूप आकृति के कारण उनसे घृणा करते थे। अतएव दोनों जातियो मे रक्त मिश्रण नही हो पाया और नियण्डर्थल जाति युद्ध मे पराजित हो जाने के बाद स्वयं ही लुप्त हो गई। लेकिन पिछले कुछ दशकों में पेलेस्टाइन और मध्य एशिया में ऐसे मानवों के अस्थि-अवशेष प्राप्त हुये है जो निश्चित रूप से नियण्डर्थल और 'पूर्णमानव' जाति के बीच की अवस्था का सूचक हैं। पेलेस्टाइन में **गैलिली समुद्र के पास** एक गुफा में प्राप्त कपाल और **कार्मेल पर्वत की** उपत्यका में तीन गुफाओं में प्राप्त दस अस्थि-पिंजर निश्चित रूप से **नियण्डर्थल** के बजाय नियण्डर्थलसम (Neanderthaloid) प्रतीत होते है। इसी प्रकार १६३८ में रूस के उजबेकिस्तान गणतन्त्र में एक नियण्डर्थलसम बालक के अवशेष प्राप्त हुये। ये अवशेष सम्मिलित रूप से '**शुल-उपशाखा**' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें नियण्डर्थलो और 'पूर्णमानवो' की शारीरिक विशेषताएँ मिले-जुले रूप मे मिलती है। इससे स्पष्ट है कि नियण्डर्थल जाति और 'पूर्णमानवों' के रक्त मिश्रण की सम्भावना को एक दम विस्मृत नही किया जा सकता।

**नियण्डर्थल संस्कृति के अवशेष—तस्मानिया**—नियण्डर्थल जाति का रक्त पूर्ण-मानवों में हो या न हो, कम-से-कम उसकी संस्कृति अभी तक एकदम विलुप्त नही हो पायी है। आधुनिक काल में जब डच व्यापारियो ने तस्मानिया की खोज की तो उन्हें वहाँ एक ऐसी जाति मिली जिसका रहन-सहन नियण्डर्थलों के रहन-सहन से मिलता-जुलता था। यह जाति **शारीरिक-संरचना** की दृष्टि से 'पूर्णमानव' वर्ग की थी। यह तथ्य इस बात का एक और प्रमाण है कि नियण्डर्थल जाति मूलतः 'पूर्णमानव' वर्ग की सदस्य थी। केवल मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में यूरोप

६

# परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल

की विशेष परिस्थितियों के कारण उसकी शरीर-संरचना में 'दोष' उत्पन्न हो गये थे। इसके विपरीत तस्मानियन जाति की शरीर-संरचना वैसी ही बनी रही। इतना ही नहीं किसी विशेष कारणवश शेष विश्व से पृथक हो जाने और सभ्य जातियों के प्रभाव से मुक्त रहने के परिणामस्वरूप वह आधुनिक काल तक उसी आदिम अवस्था में पड़ी रही जिसमें वह मध्य-पूर्व-पाषाणकाल में थी।

६

# परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल

## 'पूर्णमानव' जातियाँ

हम देख चुके हैं कि चतुर्थ हिमयुग मे पश्चिमी यूरोप पर नियण्डर्थल जाति का आधिपत्य था। अब से लगभग ३५,००० वर्ष पूर्व यह जाति सहसा विलुप्त होने लगती है और उसका स्थान ऐसी मानव जातियाँ लेने लगती हैं जिनकी शरीर-संरचना पूर्णरूपेण आधुनिक मनुष्य जातियों की शरीर-सरचना के समान थी। उनके मस्तिष्क-कोष, दाँत, ठोड़ी, गर्दन, नाक, पैर और हाथ की बनावट ऐसी थी जैसी आधुनिक मानवों की होती है। नृवंशशास्त्री इन मानव जातियों को 'पूर्ण-मानव' या 'मेधावी मानव' (Homo sapiens अथवा True man) वर्ग में रखते हैं। इस जाति के प्रादुर्भाव के पश्चात् मानव का शारीरिक विकास रुक जाता है परन्तु सांस्कृतिक विकास चलता रहता है।

---

इस पृष्ठ के ऊपर पूर्वी स्पेन में क्रीटास (Cretas) स्थान मे स्थित एक गुफा-आश्रय (Rock-Shelter) से प्राप्त परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल का बारहसिंगे का एक चित्र दिया गया है। चित्रकार को बारहसिंगे के यथार्थ अङ्कन में पूर्ण-सफलता मिली है (पृ० ५६)।

**'पूर्णमानव' जाति का आदिस्थल**—'पूर्णमानव' जाति परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल मे यूरोप, उत्तरी और पूर्वी अफ्रीका तथा एशिया के विभिन्न प्रदेशों मे एक साथ दिखाई देती है, इसलिये यह कहना कठिन है कि इसका सर्वप्रथम आविर्भाव कहाँ हुआ। अब से कुछ वर्ष पूर्व तक कुछ अँग्रेज लेखकों का यह मत था कि 'पूर्णमानव' जाति का विकास 'पिल्टडाउन-मानव' से हुआ, लेकिन 'पिल्टडाउन-मानव' की यथार्थता के सदिग्ध हो जाने के बाद इस मत को मानने का प्रश्न ही नही उठता (पृ० ३०)। कुछ अन्य विद्वानो का मत है कि जिस समय नियण्डर्थल जाति यूरोप मे मध्य-पूर्व-पाषाणकालीन जीवन व्यतीत कर रही थी, उस समय 'पूर्णमानव' जाति अपने आदि-स्थल मे लगभग उसी प्रकार की अवस्था से गुजर रही थी। यह आदि-स्थल सम्भवत एशिया अथवा अफ्रीका मे था जहाँ से यह उत्तरी अफ्रीका होते हुए यूरोप आई। सम्भवत. उस समय मेडीट्रेनियन समुद्र का अधिकाश भाग शुष्क होने के कारण उत्तरी अफ्रीका और यूरोप परस्पर जुड़े हुये थे

चित्र २३ : क्रोमान्यों-मानव

(मानचित्र १); इसलिए उसे मेडीट्रेनियन प्रदेश पार करके यूरोप आने में कोई कठिनाई नही हुई। कुछ अन्य विचारको ने मेडीट्रेनियन समुद्र के उस शुष्क प्रदेश को ही, जो अब जलमग्न है, पूर्णमानवो का आदि-स्थल माना है। कुछ नृवंश-शास्त्री नियण्डर्थलो के ही विकसित रूप मे 'पूर्णमानव' बन जाने की सम्भावना पर बल देते है। लेकिन हम देख चुके है 'पूर्णमानव' जातियों का उदय सम्भवत:

प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल में ही हो चुका था और स्वयं नियण्डर्थल जाति भी 'पूर्णमानव' जाति की एक शाखा थी। केवल उसकी शरीर-संरचना का कुछ विशेष परिस्थितियों में रहने के कारण भिन्न प्रकार से विकास हो गया था (पृ० ३६)। इसका एक प्रमाण स्वैन्सकोम्बे, स्टीनहीम और फोंतेशेवाद स्थानों से प्राप्त होने वाले प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल के अस्थि-अवशेष है (पृ० ३०)। इन अवशेषों के मानवों की शरीर-संरचना मे ऐसी कोई बात नही मिलती जिससे उन्हें 'पूर्णमानव' वर्ग में न रखा जा सके। दूसरे, सन् १९५१ ई० में सी० कून नामक विद्वान् ने ईरान की हूतूगुफा से पूर्ण-मानव एक का कपाल प्राप्त किया। इसकी आयु ७५,००० से एक लाख वर्ष पूर्व तक मानी जाती है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल में जिस 'पूर्णमानव' जाति का प्रभुत्व स्थापित हुआ उसका अस्तित्व पहले से ही था। इसके अतिरिक्त, ईरान में एक लाख वर्ष पुराने पूर्णमानवों के अस्थि-अवशेष मिलने से यह भी संकेत मिलता है कि ३५,००० वर्ष पहले यूरोप में पूर्णमानवों का आगमन सम्भवत. **पश्चिमी एशिया** से हुआ। इसका समर्थन पैलेस्टाइन में गैलिली समुद्र के पास और कर्मेल पर्वत की उपत्यका में मिलने वाले अस्थि-अवशेषों से भी होता है (पृ० ४३), क्योंकि यह परवर्ती-पूर्व-पाषाण-कालीन 'पूर्णमानव' और नियण्डर्थल जातियों के रक्त मिश्रण का प्राचीनतम प्रमाण है।

**यूरोप की पूर्णमानव जातियाँ**—जिस समय 'पूर्णमानव' जाति ने नियण्डर्थलों को पराजित करके यूरोप पर अधिकार स्थापित किया वह कई शाखाओं में विभाजित हो चुकी थी। यूरोप मे इसकी **चार शाखाएं** ज्ञात हैं—

(अ) **क्रोमान्यों-मानव** (Cro-Magnards)—इस मानव के अवशेष १८८६ ई० में दक्षिणी फ्रांस में क्रोमान्यों गुफाओं में मिले इसलिए इसे क्रोमान्यों मानव कहते हैं। बाद मे इसके बहुत से अवशेष फ्रास के अन्य प्रदेशों, जर्मनी, स्वीट्जरलैण्ड और वेल्स मे प्राप्त हुये। यह मानव ५'१०" से ६'४" तक लम्बा होता था। उसका कपाल उन्नत, मुखाकृति चौडी तथा ठोडी और नाक नोकीली होती थी (चित्र २३)।

(आ) **ग्रिमाल्डी-मानव** (Grimaldians)—इस मानव के अवशेष १९०१ मे फ्रास में मेडीट्रेनियन सागर के तट पर ग्रिमाल्डी नामक गुफाओं मे मिले। यूरोप में ऐसे अवशेष अन्य किसी स्थान मे नही मिले है। ये अवशेष एक स्त्री और युवक—सम्भवत. माँ और पुत्र—के हैं। स्त्री की लम्बाई ५'३" तथा बालक की ५' है। प्रो० वरनो (Verreau) के अनुसार इनके कपाल, ठोड़ी और दाँत आधुनिक नीग्रो जाति से मिलते-जुलते हैं। यद्यपि इलियट स्मिथ तथा आर्थर-कीथ इत्यादि विद्वानों ने इस निष्कर्ष से असहमति प्रकट की है तथापि यह सर्वथा

सम्भव है कि ये अवशेष ऐसे व्यक्तियों के हों जो किसी दुर्घटनावश अफ्रीका से यूरोप आ गये हो।

(इ) **कोंब कोपेल** (Combe-copelle) **मानव**—इस मानव के अवशेष फ्रांस के दोर्दोन (Dordogne) स्थान से १९०९ ई० मे प्राप्त हुये। इस जाति के मानवों का सिर गोल, नाक चौड़ी जबड़ा छोटा और ठोडी विकसित होती थी परन्तु कद ओमान्यो से बहुत छोटा—कुल दो फुट ३ इंच के लगभग—होता था।

(ई) **शांसलाद** (Chancelade) **मानव**—इस जाति के मनुष्य, जिनके अवशेष १८८८ मे फ्रांस मे प्राप्त हुये, कद मे सबसे छोटे होते थे। पाँच फुट से अधिक तो इनमे कोई न था। परन्तु इनका शरीर भारी तथा खोपड़ी बड़ी होती थी। अधिकांश विद्वान् इस जाति को ग्रीनलैण्ड की आधुनिक एस्किमो जाति से मिलती-जुलती मानते है।

**एशिया और अफ्रीका की मानव जातियाँ**—यूरोप के बाहर एशिया और अफ्रीका में परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल से सम्बन्धित पुरातात्त्विक अन्वेषण बहुत कम हो पाये हैं, इसलिये इन महाद्वीपो मे 'पूर्णमानव' जाति के विकास का चित्र प्रस्तुत करना कठिन है। जहाँ तक एशिया का सम्बन्ध है हम हाल ही में अन्वेषित **हूतूमानव** (ईरान) का उल्लेख कर चुके है। दक्षिण-पूर्वी एशिया मे जावा से प्लीस्टोसीन युग के अन्तिम चरण के स्तरो में दो उल्लेखनीय अस्थि-अवशेष मिले हैं। इन अवशेषों को **वादजक और सोलो मानवों** के अवशेष कहा जाता है। इनकी शरीर-संरचना मे कुछ नियण्डर्थलसम तत्त्व पाये जाते हैं।

अफ्रीका के मानव अवशेषो मे सर्वप्रथम **रोडेशियन-मानव** के अवशेषों का उल्लेख किया जा सकता है जो १९२१ मे रोडेशिया के ब्रोकनहिल नामक स्थान पर खानो मे खुदाई करते समय एक गुफा के अन्तिम भाग मे मिले थे। इन अवशेषों मे कपाल का कुछ भाग, रीढ़ की हड्डी, बस्ति प्रदेश का कुछ भाग तथा टाँग की अस्थियाँ सम्मिलित है। प्रारम्भ मे विद्वानों की यह धारणा थी यह मानव नियण्डर्थल से मिलता-जुलता था, परन्तु आजकल यह माना जाता है कि रोडेशियन-मानव ओमान्यो के अधिक निकट था।

१९१३ ई० में ट्रांसवाल में एक मानव की अस्थियाँ मिली। यह मानव **बोस्कोप-मानव** कहलाता है। *यद्यपि ये अस्थियाँ टूटी-फूटी* अवस्था मे मिली है तथापि इनसे यह सिद्ध हो जाता है कि यह मानव 'पूर्णमानव' वर्ग का था।

उपकरण

**नये उपकरण**—परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल मे यूरोप मे जो नयी जातियाँ आई वे नियण्डर्थलो से अधिक प्रबुद्ध थी और उनकी सौन्दर्य-भावना समस्त पाषाण-

काल की किसी भी जाति से अधिक समुन्नत थी । इनका जीवन भी पूर्वगामी जातियों के जीवन से कहीं अधिक जटिल था; इसलिये उनको विविध प्रकार के हथियारों की आवश्यकता पड़ती थी । इन हथियारों के निर्माण के लिए वे अपनी पूर्वगामी जातियों के समान केवल पाषाण पर ही निर्भर नही रहते थे वरन् सींग, हाँथी दांत और अस्थियों का भी प्रचुरता से प्रयोग करते थे । इन नवीन द्रव्यों के हथियारो को समुचित रूप देने के लिये उन्होंने पॉलिश करने की विधि का आविष्कार किया । कालान्तर में इस विधि का प्रयोग नव-पाषाणयुग में पत्थर के हथियारों को सुन्दरतर बनाने के लिए किया गया । उन्होंने पाषाण-हथियारो के बनाने की नई विधियों का भी आविष्कार किया । मध्य-पूर्व-पाषाणकाल तक पाषाण हथियार मुख्यतः आन्तरिक (Core) अथवा फलक (Flake) के बनते थे । परवर्ती-पूर्व-पाषाण-कालीन जातियो ने आन्तरिक और फलक के स्थान पर ब्लेड-हथियारों (Blade) को प्रधानता दी । 'ब्लेड' पतले समानान्तर फलक (Flake) को कहते है । इनका निर्माण करना अधिक सुविधाजनक था और ऐसे औजार उनके कलाकारों के लिए भी उपयोगी होते थे । ब्लेड हथियारो में सबसे प्रसिद्ध रुखानी या नक्काशी-यन्त्र (Burin या Graver) नाम का हथियार है जिसकी नोक छेनी की नोक के आकार की परन्तु बहुत छोटी होती थी ।

**प्रमुख संस्कृतियां**—पुरातत्त्ववेत्ताओं ने परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन संस्कृतियों को तीन युगों में बांटा है—ऑरिग्नेशियन, सौल्युट्रियन, और मैग्डेलेनियन । यह स्मरणीय है कि इन संस्कृतियों का तत्कालीन मानव जातियो के साथ सम्बन्ध जोड़ना लगभग असम्भव है । ऐसा बहुधा देखने मे आता है कि एक ही जाति दो-तीन संस्कृतियों से और एक संस्कृति कई जातियों से सम्बन्धित है । दूसरे, इन संस्कृतियों का तिथिक्रम भी लगभग अज्ञात है । केवल साधारणरूप से इनका क्रम निर्धारित किया जा सकता है ।

(अ) ऑरिग्नेशियन संस्कृति (Aurignacian Culture)—परवर्ती-पूर्व-पाषाण-काल की प्रथम संस्कृति फ्रांस की ऑरिग्नाक गुफा के नाम पर ऑरिग्नेशियन कहलाती है (*चित्र २४*) । *इसको तीन उपयुगों मे विभाजित किया जाता है ।* प्रारम्भिक-ऑरिग्नेशियन (Upper Aurignacian) या शेतलपेरोनियन (Chatel-perronian), मध्य-ऑरिग्नेशियन तथा उत्तर-ऑरिग्नेशियन अथवा ग्रवेशियन (Gra-vetian)[1] । इस संस्कृति का उदय सम्भवतः पश्चिमी एशिया में हुआ; लेकिन

१. पश्चिमी यूरोप में मध्य ऑरिग्नेशियन के पश्चात् आने वाली ग्रवेशियन संस्कृति शेतलपेरोनियन का ही विकसित रूप थी । इसलिये पश्चिमी यूरोप मे शेतलपेरोनियन और ग्रवेशियन संस्कृतियों को सम्मिलित रूप से पेरिगोरडियन (Perigordian) संस्कृति भी कहते हैं ।

चित्र २४ : ऑरिन्येशियन उपकरण

मूस्टेरियन युग के अंत में यह धीरे-धीरे पूर्व और मध्य यूरोप, इटली, दक्षिणी-फ्रांस, उत्तरी स्पेन और इंग्लैण्ड में फैल गई। पेलेस्टाइन, पूर्वी अफ्रीका तथा साइबेरिया, उत्तरी चीन और दक्षिणी भारत मे भी ऑरिन्येशियन हथियारो से मिलते-जुलते हथियार प्राप्त होते हैं। इनमे अस्थि के पॉलिश-दार पिन, टेकुए (Awls) और बर्छी के सिरे, आन्तरिक के रन्दे (Core end-scrapers) और ब्लेड के सुन्दर चाकू इत्यादि सम्मिलित हैं।

(आ) सौल्युट्रियन संस्कृति (Solutrean Culture)—इस काल के ब्लेड उपकरण, जो पूर्वी स्पेन से काले सागर तक मिलते है अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध है (चित्र २५,१–४)। यद्यपि ये बिना पॉलिश किये बनाये गये हैं तथापि

चित्र २५ : सौल्युट्रियन उपकरण

इनमें कुछ फौलाद के उस्तरे के समान पतले और धारदार हैं। सौल्युट्रियन युग के विशेष औज़ार लॉरेल (*Laurel*) और विलो (*Willow*) पत्तियों के आकार के बर्छी के सिरे थे (चित्र २५,१)। वे हिरण के सींग का टेकुआ तथा भाला और हड्डी की सुंई बनाने में भी निपुण थे।

(ई) मैग्डेलेनियन संस्कृति (Magdalenian Culture)—फ्रांस के ल-मेग्दालें स्थान के नाम पर यह संस्कृति मैग्डेलेनियन-संस्कृति कहलाती है। यह समस्त पूर्व पाषाण-युग की सर्वोत्तम संस्कृति है। इसमें पाषाण उपकरण क्रमशः छोटे बनने लगते (चित्र २६,५) हैं। ये अधिकांशतः ब्लेड से बनाये गए हैं परन्तु सींग, हाथीदांत और हड्डी का भी प्रचुरता में प्रयोग हुआ है। इनमें हड्डियों के हार्पून (ह्वेल मछली पकड़ने का भाला जिसमें रस्सी बँधी रहती थी (चित्र २६, २), सींग का भाला (चित्र २६,४) और सुई इत्यादि उल्लेखनीय हैं। कुछ अस्थि-सुंई तो बहुत ही सुन्दर हैं (चित्र २६, ३)। कुछ विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि ऐतिहासिक युग में १४ वीं-१५ वीं शताब्दी तक भी ऐसी सुन्दर सुइयाँ नहीं मिलती। इस काल के हथियारों पर बहुधा ऐसी आकृतियाँ खुदी हुई मिलती हैं जो कलात्मक दृष्टि से बहुत ही उच्चकोटि की है (चित्र २६, १)। मैग्डेलेनियनों ने एक ऐसा यन्त्र भी बनाया जिससे बर्छी को अधिक दूर फेंका जा सकता था और लक्ष्य को अधिक सफलता से भेदा जा सकता था।

चित्र २६ : मैग्डेलेनियन उपकरण

उपर्युक्त तीनों संस्कृतियाँ मुख्यतः यूरोप और एशिया में पाई जाती हैं। इनकी समकालीन अफ्रीकी संस्कृतियाँ अतेरियन (Aterian) और केप्सियन (Capsian) हैं।

अतेरियन-संस्कृति में जो उत्तरी अफ्रीका में मिलती है, मूस्टेरियन परम्परा के पाषाणोपकरण मिलते हैं। इस संस्कृति के निर्माता दोनों ओर धारवाले बाण के सिरों का निर्माण करना जानते थे (चित्र २५, ५), इसलिए उनको धनुष-बाण के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। धनुष-बाण मानव द्वारा निर्मित प्रथम मशीन है जिसकी सहायता से हाथों की शक्ति को एक विन्दु पर केन्द्रित करके दूरस्थ लक्ष्य को भेदा जा सकता है। केप्सियन (Capsian Culture) यूरेशिया की उपर्युक्त तीनों संस्कृतियों के समान ब्लेड-संस्कृति है। इसका विस्तार दक्षिणी स्पेन,

इटली और उत्तरी अफ्रीका में था। इसके निर्माता भी धनुष-बाण से परिचित थे। इसके अतिरिक्त केप्सियनो ने पाषाणकाल में प्रथमबार लघुपाषाणोपकरणों (Microliths) का निर्माण किया। इनको मध्य-पाषाणकाल मे अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई।

## आर्थिक और सामाजिक जीवन

**आवास, वस्त्र और भोजन**—जिस समय 'पूर्णमानवों' ने नियण्डर्थलों को पराजित करके यूरोप पर अधिकार स्थापित किया, वहाँ की जलवायु पहले से अधिक उष्ण हो गई थी। इसलिए उनके लिए खुले आकाश के नीचे रहना इतना कठिन नही था। फिर भी चतुर्थ हिमयुग के शीत का अभी पूर्णरूपेण अन्त नही हुआ था, इसलिए वे गुफाओ का, जहाँ वे उपलब्ध होती थीं, प्रयोग करने से नही चूकते थे। अत इस युग को **परवर्ती-गुफायुग** भी कहते है। जहाँ गुफाएँ उपलब्ध नहीं थी वहाँ वे शीत से बचने के लिए खाल के तम्बू बनाते थे या भूमि मे गड्ढा खोदकर उसपर खाल तान देते थे। सम्भवत· वे रहने के लिए झोपड़ियाँ का निर्माण करना भी जानते थे। उनके द्वारा बनाये गये चित्रों मे देखने में से कुछ झोपड़ियो की आकृतियाँ मालूम होते है। लकडी कम उपलब्ध थी इसलिए वे अपने घरों को गर्म रखने के लिए बहुधा अस्थियाँ जलाते थे। खुरचन-यन्त्रों और सुइयो से पता चलता है कि सम्भवत. वे खाल को सीकर वस्त्र का रूप देना भी जानते थे। पूर्वी स्पेन मे तत्कालीन चित्रों मे स्त्रियो को वस्त्र पहिने दिखाया गया है।

आर्थिक दृष्टि से परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव अपने पूर्वजों के समान कृषि और पशु-पालन से अपरिचित था। उसकी आजीविका उसी प्रकार जंगली पशुओ का शिकार करने, फल और कन्द-मूल का सग्रह करने और मछली पकड़ने पर निर्भर थी जिस प्रकार नियण्डर्थल की। लेकिन वह इन कार्यो मे नियण्डर्थल से अधिक कुशल हो गया था और धनुष-बाण जैसे नये हथियारों की सहायता से अधिक खाद्य-सामग्री का संग्रह कर सकता था। अब वह साधारण मछली पकड़ने के लिए काँटे का और बड़ी मछली पकड़ने के लिए हार्पून का प्रयोग करता था। शिकार मे वह गड्ढे खोदकर बड़े-बड़े पशुओ को फँसाने की विधि जानता था। अब वह बनैले पशुओं के स्वभाव और ऋतु-परिवर्तन के अवसर पर उनके स्थानान्तरण के समय से भी परिचित हो गया था और इस अनुभव का लाभ भी उठाता था। उदाहरण के लिए उसे यह ज्ञात था कि उस युग मे गर्मी के अन्त में, मैमथ, रैनडियर, भैंसे और जंगली घोड़े विशाल झुण्डों में, रूस और साइबेरिया के चरागाहो से, जाड़ा व्यतीत करने के लिए डेन्यूब की घाटी की ओर जाते हैं। इसलिए वह अपने कैम्प ऐसे स्थान पर लगाता था जहाँ से इन पशुओं का गुज़रना निश्चित हो। इस विधि के

अपनाने से उसे शिकार में अत्यधिक सफलता मिली। एक स्थान पर उसके द्वारा मारे गये रैनडियर और जंगली भैंसों की अस्थियों के अतिरिक्त एक सहस्र से अधिक मैमथों और एक लाख से अधिक जंगली घोड़ों की अस्थियाँ मिली है। सम्भवतः जंगली घोड़े का माँस उसका प्रिय भोजन था।

**प्राचीनतम विशेषज्ञ**—विशालकाय पशुओं का शिकार करने में बहुत से व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक था, इससे स्पष्ट है कि परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव 'समूहों' मे रहता होगा। समूहों में सम्भवतः थोड़ा-बहुत श्रम-विभाजन होने लगा था। जैसा कि हम बाद में देखेंगे, उनके समाज में कम-से-कम एक व्यक्ति ऐसा अवश्य था जिसका कार्य सब मनुष्य नही कर सकते थे। वह व्यक्ति था कलाकार, जो उनके गुहा-गृहों को चित्रों से सुसज्जित करता था। यह विश्वास किया जाता है कि इन चित्रों का महत्त्व धार्मिक था; इसलिए यह कलाकार कुछ अर्थों में पुजारी भी कहा जा सकता है। इस कलाकार-पुजारी का कार्य उसका पूरा समय ले लेता था इसलिए उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति समाज को करनी पड़ती थी। अतः हम कह सकते है कि उनका कलाकार-पुजारी विश्व का प्राचीनतम 'विशेषज्ञ' (Specialist) था।

**पारस्परिक सम्पर्क**—परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन समूह बहुधा आत्म-निर्भर होते थे। इस समय तक आर्थिक व्यवस्था इतनी जटिल नही हो पायी थी कि एक समूह दूसरे समूह पर निर्भर रहता। एक समूह के सदस्यों को जिन उपकरणों की आवश्यकता पडती थी उनको वे स्वयं बना लेते थे। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक समूह दूसरे समूहों से पृथक जीवन व्यतीत करता था। हमें ऐसे प्रमाण प्राप्त होते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि दूरस्थ समूहों में वस्तुओं का आदान-प्रदान होता रहता था। उदाहरणार्थ भूमध्यसागर में प्राप्त होने वाली सीपियाँ, कौड़ियाँ तथा सामुद्रिक मछलियों की हड्डियाँ मध्य फ्रांस में मैग्डेलेनियनयुगीन अवशेषों के साथ मिलती हैं। इससे स्पष्ट है कि समुद्रतट के समीप रहने वाले समूह मध्य फ्रांस के समूहों से वस्तुओं का आदान-प्रदान करते रहते थे।

कला

**आभूषण इत्यादि**—दूरस्थ प्रदेशों से आयात की गई सीपियों, कौड़ियों और दाँतों इत्यादि का प्रयोग आभूषण बनाने में किया जाता था। परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव सौन्दर्य-प्रेमी थे। वे अपने शरीर को सजाने के लिए विविध प्रकार के आभूषण बनाते थे। इन आभूषणो पर नक्काशी करके भाँति-भाँति के डिज़ाइन और चित्र बनाये जाते थे। वे अपने मृतकों को लाल रंग से रंगते थे, इससे अनुमान किया जाता है कि जीवितावस्था मे वे शरीर को विविध प्रकार के रंगों

से रंगते होंगे। आजकल भी बहुत सी आदिम जातियों में शरीर को रंगने की या प्रचलित है।

**स्थापत्य**—परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानवों का सौन्दर्य-प्रेम और रगों के प्रति आकर्षण उनके स्थापत्य और चित्रकला से भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है। अन्य बातों में जगली होते हुए भी उन्होंने कला के क्षेत्र में जो कौशल प्रकट किया है वह आश्चर्यजनक है। कला के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने न केवल भित्ति-चित्र बनाये वरन् अस्थियों और सींगों से निर्मित औज़ारों और हथियारों पर नक्काशी करके सुन्दर आकृतियाँ (चित्र २६, १) और हाथीदाँत तथा मिट्टी की मूर्तियाँ भी बनाईं। वे बहुधा अपने अस्थि-निर्मित औज़ारों के हत्थे या किसी अन्य अंश पर पशु की आकृति खोद देते थे और अस्थियों के समतल टुकड़ों को पशुओं की आकृतियों में काट देते थे। अस्थियों के गोल डण्डों पर नक्काशी करके सुन्दर डिज़ाइन भी बनाये जाते थे। इनका उपयोग सम्भवतः चर्म-वस्त्रों पर छपाई करने में किया जाता था। पाषाण-खण्डों पर नीची-रिलीफ (Low relief) में बनाई गई आकृतियाँ भी प्राप्त होती हैं।

चित्र २७ : ऑरिन्येशियन युगीन नारी-मूर्ति
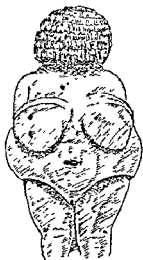
ऑरिन्येशियन युग की हाथीदाँत, पाषाण और मिट्टी तथा अस्थियों के मिले-जुले चूर्ण की लघु मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये मूर्तियाँ मिश्र, क्रीट, ऑस्ट्रिया, इटली, फ्रांस और स्पेन से प्राप्त होती है। कुछ नारी-मूर्तियों में, जिनको पुरातत्त्वशास्त्री 'रति' या 'वीनस' (Venus) की मूर्तियाँ कहते हैं, सिर बहुत छोटे दिखाये गये हैं। बालों के स्थान पर कुछ लकीरें खींच दी गई हैं परन्तु पेट, नितम्ब और स्तनों को अपेक्षाकृत बड़ा दिखाया गया है। ऐसा लगता है मानो उन्होंने गर्भवती स्त्रियों की मूर्तियाँ बनाने का प्रयास किया है। (चित्र २७) ये मूर्तियाँ मातृ-शक्ति के किसी रूप से सम्बन्धित है (पृ० ५८) परन्तु कला की दृष्टि से सुन्दर नहीं हैं। बाद की कुछ मूर्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक मनोहर मालूम होती हैं। एक हाथीदाँत की मूर्ति में (चित्र ३१, पृ० ६०) एक लड़की के जूड़े को चित्रित करने में कलाकार को अच्छी सफलता मिली है।

**प्रारम्भिक चित्रकला**—परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन चित्रकला के विकास की क्रमिक अवस्थाओं का विस्तरशः अध्ययन किया जा सकता है। उनके प्रारम्भिक

चित्र आजकल के बाल-चित्रों के समान लगते हैं। इनमें बहुधा चतुष्पद पशुओं के केवल दो पैर—एक अगला एक पिछला—दिखाये गये हैं। ऐसा लगता है मानों पशुओं की छायाओं को छोटा करके उनके चारों ओर रेखाएँ खींच दी गई हैं (चित्र २८)। यह युग विश्व इतिहास में चित्रकला का उपःकाल था। इसलिये वे चित्रकला की मूल समस्या को हल करने में असफल रहे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिये। किसी वस्तु की आकृति बनाते समय हमें उसकी लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई दिखानी होती है। पाषाण और मिट्टी इत्यादि में ये तीनों बातें होती हैं अतः इनसे मूर्तियाँ बनाना आसान होता है। लेकिन कागज़ या दीवार पर चित्र बनाते समय कलाकार के पास केवल लम्बाई और चौड़ाई होती है, मोटाई नहीं। इसलिये इन पर ज्योमितिक चित्र तो आसानी से बनाये जा सकते हैं, (जिनमें केवल लम्बाई और चौड़ाई दिखानी होती है) परन्तु पशु या मानव की आकृति बनाने में कठिनाई होती है क्योंकि कागज़ में मोटाई न होने पर भी मोटाई का भाव देना होता है। आजकल यह बात हमें बहुत आसान लगती है परन्तु परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव के लिए यह अत्यन्त कठिन कार्य था। उसे इस समस्या का हल स्वयं खोजना पड़ा था। इस आविष्कार का महत्त्व केवल कला के क्षेत्र में ही नहीं वरन् विज्ञान और साहित्य के लिए भी है; क्योंकि लिपि का विकास, जिस पर हमारा सारा ज्ञान-विज्ञान निर्भर है, चित्रकला के जन्म के बिना असम्भव था।
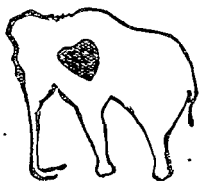
चित्र २८: ऑरिन्येशियन युगीन हस्ती चित्र

**मैंग्डेलेनियन चित्रकला**—एक बार चित्रकला सम्बन्धी कठिनाइयों पर विजय पा लेने के बाद प्रगति सहज हो गई। धीरे-धीरे उनकी 'तकनीक' सुधरती गई और कलाकृतियों का सौन्दर्य बढ़ता गया। मैंग्डेलेनियन-युग तक पहुँचते-पहुँचते उनके चित्र तकनीक और सौन्दर्य दोनों की दृष्टि से इतने उत्कृष्ट हो जाते हैं कि आधुनिक कलाकारों के लिए भी उनका निर्माता होना गौरव का कारण हो सकता है। उनकी चित्रकला के सर्वोत्तम नमूने १८७९ ई० में उत्तरी स्पेन में अल्तमीरा स्थान की प्रागैतिहासिक गुफाओं की छतों और दीवारों पर प्राप्त हुये हैं (प्लेट १)। इनमें चार रंगों से बनाया गया जंगली भैंसे का एक चित्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह मैंग्डेलेनियन युग की ही नहीं, समस्त प्रागैतिहासिक काल की चित्रकला का सर्वोत्तम नमूना है। कुछ चित्र ऐसे हैं जिन्हें **संकेत-चित्र** (Suggestion-pictures) कहा जा सकता है (चित्र ८, पृ० २३)। एक चित्र में रैनडियरों के झुण्ड का अंकन है। इसमें पीछे एक और आगे तीन रैनडियरों की आकृतियाँ बनाई

गई है; शेष का रेखाओं द्वारा संकेत मात्र कर दिया गया है। इस प्रयास मे कलाकार को पूर्ण सफलता मिली है। उत्तरी स्पेन के अतिरिक्त पूर्वी स्पेन मे भी कुछ सुन्दर चित्र प्राप्त हुये है (चित्र २२, पृ०२३)। इनमे कुछ मे शिकार के दृश्य उत्कीर्ण किये गये हैं। मानव-आकृतियो का अङ्कन इस प्रदेश के चित्रो की विशेषता है (चित्र ३०)।

चित्रों को बनाने मे वे नैसर्गिक रंगों का प्रयोग करते थे। काला, लाल, पीला और सफेद रगों का विशेषरूप से प्रयोग किया गया है। रगो का चूर्ण बनाकर उसमें चर्बी मिला दी जाती थी। उनके द्वारा प्रयुक्त रग अभी तक यथावत् मिलते है। ब्रुश का प्रयोग वे करते थे या नही, कहना कठिन है। यह सर्वथा सम्भव है कि वे इसका प्रयोग जानते हों, क्योकि ब्रुश बनाने के लिए उन्हे बाल पर्याप्त मात्रा में सुलभ थे।

**परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन चित्रकला का हेतु**—इन चित्रो को बनाने मे तत्कालीन कलाकारों का क्या उद्देश्य था, इस विषय मे विद्वानो ने बहुत से अनुमान लगाये हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि ये चित्र उनकी विशुद्ध कलात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। कुछ अन्य विद्वान् यह विश्वास करते हैं कि पाषाण-कालीन कलाकारो का उद्देश्य अपने हथियारों और रहने की गुफाओं को सज्जित करना मात्र था। परन्तु कुछ तथ्य ऐसे है जिनके कारण इन मतो को स्वीकार करना कठिन हो जाता है। एक तो ये चित्र बहुधा ऐसे स्थानों से प्राप्त होते है, जहाँ दिन मे भी घोर अंधकार रहता था और आजकल भी प्रकाश का प्रबन्ध करने मे कठिनाई होती है। तत्कालीन कलाकार को पत्थर के प्यालो (चित्र २९) या पशुओं के कपाल में चर्बी जलाकर इन अंधेरी गुफाओं को प्रकाशित करना पडता होगा। अगर कलाकार का उद्देश्य अपनी सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्त करना मात्र होता तो वह ऐसे दुर्गम और अंधकारपूर्ण गुहा-गह्वरों में जाने के बजाय द्वार के पास सुप्रकाशित भित्तियो पर चित्र बनाता। दूसरे, कुछ चित्र ऐसे स्थानो पर बनाये गये हैं जहाँ कलाकार को बड़ी कष्ट-कर मुद्रा में बैठना पड़ा होगा। कही उसने सीधे लेटकर, कहीं उल्टे लेटकर और
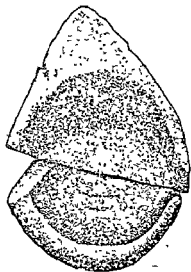
चित्र २९ : पूर्व-पाषाणकालीन पत्थर का प्याला

कहीं अपने साथी के कन्धे पर बैठकर चित्र बनाये होंगे। स्पष्ट है कि गुफाओं को सजाने अथवा अपनी सौन्दर्यानुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिये इतने कष्ट उठाने की आवश्यकता न थी। तीसरे, बहुधा देखने मे आता है कि भित्तियों पर पर्याप्त स्थान सुलभ होने पर भी पुराने चित्रों के ऊपर नवीन चित्र बना दिये गये हैं। जहाँ लगभग एक से और समकालीन चित्रों के ऊपर नवीन चित्र बना दिये गये हैं, वहाँ यह बात और भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि कलाकार का उद्देश्य अपने 'घर' की सजावट करना या विशुद्ध कलानुभूतियो को अभिव्यक्त करना नही था।
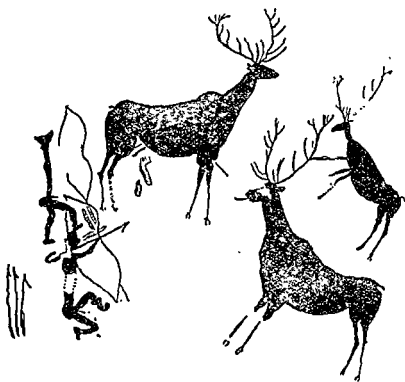
चित्र ३० : पूर्वी स्पेन की चित्रकला

फ्रेजर, रिनाख़ तथा बर्किट इत्यादि विद्वानों ने यह मत प्रकट किया है कि ये चित्र उनकी धार्मिक विचारधारा तथा खाद्य समस्या से सम्बन्धित है। यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि इन चित्रों मे अधिकाशतः रैनडियर, मैमथ, भालू, भैंसे और घोडे इत्यादि पशुओं का चित्रण है। इन पशुओं का उनके जीवन मे महत्त्वपूर्ण स्थान था। इनसे उन्हें न केवल खाने के लिए मांस मिलता था वरन् हथियार बनाने के

लिए सींग, हाथीदाँत और अस्थियाँ तथा तम्बू और वस्त्र बनाने के लिए खाल भी मिलती थी। दूसरे, कुछ चित्रों मे शिकार का दृश्य अंकित किया गया है (चित्र ३०)। किसी-किसी पशु के शरीर मे भाला घुसा हुआ दिखाया गया है। सम्भवतः उनका विचार था कि किसी पशु का शिकार करने के पहले यदि उसकी आकृति का शिकार कर लिया जाय तो वास्तविक शिकार में निर्विघ्न रूप से सफलता मिलती है, क्योकि उस पशु की आत्मा चित्र मे पहले ही बन्दी बना ली जाती है। इस विचारधारा को मानवशास्त्री सादृश्यमूलक (Sympathetic magic) कहते है। किसी बड़े पशु का शिकार करने के पहले चित्रकार उस पशु की आकृति बनाते होंगे और उसे अपने साथी शिकारियों को दिखाते होंगे। इससे शिकारियों मे साहस और आत्मविश्वास आता होगा। आदिम जातियों के लिए यह प्रक्रिया जादू से कम नही थी।

## धार्मिक विश्वास

उनकी चित्रकला के सम्बन्ध में यदि उपर्युक्त अनुमान सही है तो मानना पड़ेगा कि वह स्थान जहाँ उनके चित्रकार चित्र बनाते थे, एक प्रकार के 'मन्दिर' थे। इन मन्दिरों में 'चित्रों का दर्शन' करना शुभ माना जाता था। इस दृष्टि से देखने पर इन चित्र बनाने वाले कलाकारों को मन्दिरों का पुजारी कहा जा सकता है। उन्ही के हाथ मे वह जादू था जिसके द्वारा वे पशुओं की आत्मा पकड़कर अपने समूह के लिए खाद्य-सामग्री सुलभ करते थे। स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्तियों का समूह मे अत्यधिक प्रभाव रहता होगा। उनको परवर्ती-पूर्व-पाषाणकालीन मानव के धार्मिक विश्वासों का संरक्षक कहा जा सकता है। उनके द्वारा निर्मित नारी-मूर्तियाँ (चित्र २७, पृ० ५४) मातृ-शक्ति के किसी रूप की उपासना से सम्बन्धित हो सकती हैं। हथियारों पर आकृतियाँ खोदने का अर्थ उन्हें अधिक प्रभावशाली बनाना होगा। आभूषण प्रतीत होने वाली लघु मूर्तियाँ किसी प्रकार के ताबीज हो सकती हैं। परन्तु यह आवश्यक नही है कि सभी कलाकृतियों और चित्रों के पीछे धार्मिक भावना निहित हो। इनमें कुछ के पीछे विशुद्ध सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति का प्रयास भी हो सकता है।

परलोक के विषय में उनके विचार नियण्डर्थल युग से अधिक विकसित हो गये थे, क्योकि वे न केवल अपने मुर्दों को दफनाते थे वरन् उनके साथ आभूषण, हथियार और खाद्य-पदार्थ भी रख देते थे। मृतकों के शरीर को वे लाल रंग से रंगते थे। लाल रंग रक्त का प्रतीक है। सम्भवतः उनकी यह धारणा थी कि मृत शरीर को लाल रंग से रंग देने पर जीवन की लालिमा पुन. लौट आती है।

## ज्ञान-विज्ञान

परवर्ती-पूर्व-पापाणकालीन मानवों ने अप्रत्यक्षरूप से बहुत-सा ज्ञान अर्जित किया और भावी ज्ञान-विज्ञान की नींव डाली। उदाहरणार्थ पशुओं के चित्र बनाने के लिए उन्होंने उनकी शरीर-संरचना का गहन अध्ययन किया। वे इस दिशा में कितनी प्रगति कर चुके थे यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि उनके चित्रों में एक ही प्रकार के प्राणी--जैसे मछली—की विभिन्न जातियों को पहिचानना सम्भव है। वे शरीर में हृदय के महत्त्व को जानते थे। एक चित्र में हाथी का हृदय बिलकुल ठीक स्थान पर बनाया गया है(चित्र २८, पृ० ५५) दूसरे, उन्होंने खाद्याखाद्य-पदार्थों के सम्बन्ध में नियण्डर्थलों के ज्ञान को बढ़ाया। कौन पदार्थ खाने योग्य हैं, कौन पदार्थ विषाक्त है, खाद्य-पदार्थ कहाँ मिलते हैं, किस ऋतु में प्राप्त होते हैं तथा किस पशु को कहाँ और कब पाया जा सकता है—ये सब बातें उनका ज्ञान-विज्ञान थी। इन्हीं से कालान्तर में वनस्पति-शास्त्र, प्राणी-शास्त्र और ऋतुशास्त्र इत्यादि विशिष्ट विद्याओं का जन्म हुआ।

## पूर्व-पापाणकालीन मानव की उपलब्धियाँ

पूर्व-पापाणकाल मनुष्य की कहानी का वह लम्बा युग है जिसमें वह अन्य प्राणियों पर विजय प्राप्त करके अपने अस्तित्व को बनाये रखने का प्रयास कर रहा था। आर्थिक दृष्टि से वह प्रकृतिजीवी था। उसके हथियार पापाण, अस्थि, हाथीदाँत और सींग के होते थे और उसकी उदरपूर्ति केवल जंगली कन्दमूल, फल और शिकार से होती थी। इन कठिनाइयों के कारण प्रगति बहुत धीमी थी, फिर भी प्रगति हुई, इसमें सन्देह नहीं। मनुष्य के हथियार प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पापाण और सींग इत्यादि के बनते रहे परन्तु उनके प्रकार, उपयोगिता और सौन्दर्य में वृद्धि होती गई। दूसरे, मनुष्य ने इस युग में अग्नि पर नियन्त्रण स्थापित किया, जिसके कारण न केवल उसका भोजन अधिक स्वादिष्ट हो गया वरन् उसे शीत और अंधकार से भी मुक्ति मिली और भविष्य में धातुओं से उपकरण बनाने का मार्ग खुला। यह ठीक है कि वह नितान्त प्रकृतिजीवी रहा परन्तु इससे कालान्तर में उसे लाभ ही हुआ। प्रकृति पर अवलम्बित रहने के कारण उसके लिए प्रकृति का अध्ययन करना आवश्यक हो गया। अब वह यह जान गया कि कौन पशु और वनस्पति कब और कहाँ मिलती है और उनका वह किस प्रकार उपयोग कर सकता है। इसे परवर्ती युगों के ज्ञान-विज्ञान का बीज कहा जा सकता है। पूर्व-पापाणकालीन मानव को सबसे अधिक सफलता कला के क्षेत्र में मिली। यह निश्चित है कि आजकल एक सहस्र व्यक्तियों में एक भी ऐसा नहीं मिलेगा जो चित्रकला का थोड़ा बहुत प्रशिक्षण पाये बिना ऐसे चित्र बना दे जैसे मैग्डेले-

नियनों ने बनाये । लेकिन इन सब उपलब्धियों के बावजूद पूर्व-पाषाणकालीन मानव आर्थिक क्षेत्र में नितान्त असफल रहा । अतः एक सीमा तक पहुँचने के पश्चात् उसकी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो गया ।
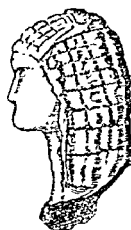
ऊपर दिया गया चित्र मैग्डेलेनियन युग के एक कलाकार द्वारा बनाई ग हाथीदाँत की एक मूर्ति की अनुकृति है । इसमें कलाकार ने जूड़े के अङ्कन में विशेषरूप से सफलता प्राप्त की है । तुलना कीजिये ऑरिन्येशियन युग की 'वीनस' अथवा 'रति' की आकृति से (चित्र २७) ।
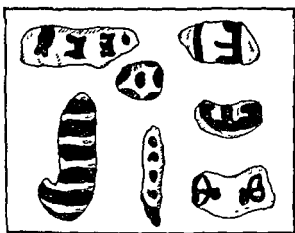
७

# मध्य-पाषाणकाल

'But thinks, admitted to that equal sky,
His faithful dog shall bear him company.'

—Pope : *Essay on Man*

## संक्रान्ति-काल

पूर्व-पाषाणकाल मे विभिन्न प्रकारों के हथियारों और औजारों के अस्तित्व तथा कला की अप्रतिम प्रगति होने के बावजूद मनुष्य को आर्थिक क्षेत्र में अधिक सफलता नही मिली। यद्यपि मैग्डेलेनियन-युग मे मैमथों, रैनडियरो, जंगली भैंसो और घोड़ों का सामूहिक रूप से शिकार होने के कारण खाद्य-समस्या किसी सीमा तक सुलझ गई और मनुष्य को इतना अवसर मिलने लगा कि वह कला के क्षेत्र में कुछ कौशल दिखा सके, तथापि पूर्व-पाषाणकाल के अन्त तक वह पूर्णतः प्रकृति-जीवी बना रहा। वह यह नही जान पाया कि वह किस प्रकार 'कृषि और पशु-पालन के द्वारा प्रकृति को अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य कर सकता है। यह दोनों आविष्कार मनुष्य ने नव-पाषाणकाल (Neolithic Age) में किये।

ऊपर दिये गये चित्र में मध्य-पाषाणयुग के प्रस्तर-खण्डो पर बने डिजायन दिखाये गये है। सम्भवत. ये किसी प्रकार के संकेत-चिह्न है जिनका अर्थ समझना असम्भव है। तुलना कीजिये मैग्डेलेनियन युगीन चित्रकला से (चित्र २२ पृ० ४६; चि० २८ पृ० ५५; चि० ३० पृ० ५७; प्लेट १)।

नव-पाषाणकाल विश्व के बहुत से प्रदेशों में पूर्व-पाषाणकाल के एकदम बाद प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु यूरोप और कुछ अन्य प्रदेशों में मानव सभ्यता पूर्व-पाषाणकाल के बाद एक संक्रान्ति-काल से गुजरती है जिसे पुरातत्ववेत्ता 'मध्य-पाषाणकाल' (Mesolithic Age या Middle Stone Age) कहते हैं।

**भौगोलिक परिवर्तन**—भूगर्भशास्त्र की दृष्टि से मध्य-पाषाणकाल प्लीस्टोसीन और होलोसीन युगों का संक्रान्ति काल है। मैंग्डेलेनियन-युग के बाद यूरोप और एशिया के भौगोलिक स्वरूप में उल्लेखनीय परिवर्तन होते हैं। भूमध्यसागर, जो अब तक दो विशाल झीलों के रूप में था, भर जाता है और अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त करता है। एशिया के मध्य में जो विशाल समुद्र था, वह शुष्क होने लगता है और धीरे-धीरे आजकल के कैस्पियन सागर, काला सागर और मध्य एशिया की झीलों के रूप में परिवर्तित हो जाता है। स्पेन अफ्रीका से, इंगलैण्ड यूरोप से और अरब प्रायद्वीप मिश्र से पृथक हो जाता है। भारत का आधुनिक स्वरूप भी इसी समय प्रकट होता है। इन महाद्वीपों के जलवायु में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। पश्चिमी एशिया और उत्तर-पश्चिमी भारत इत्यादि, जो अब-तक घास के हरे-भरे मैदान थे, अधिक शुष्क होने लगते हैं और यहाँ रेगिस्तानी परिस्थितियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। यूरोप में हिमयुगीन शीत का सर्वथा अन्त हो जाता है और उत्तरी यूरोप वनों से ढक जाता है। ठण्डी जलवायु में रहने वाले पूर्व-पाषाणकालीन पशु जैसे मैमथ, रेनडियर शनैः-शनैः उत्तर की ओर खिसक जाते हैं। इनका स्थान दक्षिण के वे पशु ले लेते हैं जो अपेक्षाकृत उष्ण जलवायु में रहने के अभ्यस्त थे। नये पशुओं के साथ पूर्ण-मानव जाति की नई शाखाएँ यूरोप में पदार्पण करती हैं और क्रोमान्यों तथा उनसे सम्बन्धित जातियों को पराजित करके अपना अधिकार स्थापित कर लेती हैं। इन परिवर्तनों का मनुष्य के जीवन पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। उसे स्वयं को नये परिवर्तनों के अनुकूल बनाना पड़ा। इसलिये तात्कालिक दृष्टि से देखने पर इस काल की सभ्यता पूर्व-पाषाणकाल की मैंग्डेलेनियन संस्कृति से हीनतर दिखाई देती है। परन्तु दीर्घकालिक विकास की दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ह्रास में ही भावी उन्नति का बीज छिपा हुआ था। इससे मनुष्य को उन आविष्कारों के लिए तैयारी करने का अवसर मिल गया जो नव-पाषाणकाल में उनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने वाले थे।

## मध्य-पाषाणकालीन मानव का जीवन

**भोजन और शिकार**—मैंग्डेलेनियन मानवों के समान मध्य-पाषाणकालीन मानव का प्रमुख भोज्य-पदार्थ शिकार से प्राप्त मांस था। परन्तु इस काल में शिकार किये जाने वाले पशु और शिकार की प्रणाली में पूर्णरूपेण परिवर्तन हो

जाता है। मैग्डेलेनियन युग में मनुष्य मैमथ, जंगली भैंसे तथा घोड़े इत्यादि का शिकार करता था। इनका शिकार करने के लिए उसे सामूहिक रूप से प्रयत्न करना पड़ता था। अतः इस युग में मनुष्य बड़े-बड़े समूहों में रहता था। लेकिन मध्य-पाषाणकाल में इन विशालकाय पशुओं की संख्या कम होती जा रही थी, इसलिये मनुष्य को बड़े-बड़े समूहों में रहने की आवश्यता न रही। इस काल के पशुओं, जैसे हिरण, खरगोश, और बारहसिंगा इत्यादि का शिकार अकेले या छोटे-छोटे समूहों मे करना आसान पड़ता था। इसलिये मध्य-पाषाणयुग में हमें मनुष्य यूरोप के विभिन्न भागों मे छोटे-छोटे समूहों में बिखरा दिखाई देता है। इस काल मे मनुष्य ने एक नयी बात अवश्य सीखी और वह थी शिकार करने मे कुत्ते का सहयोग प्राप्त करना। कुत्ता मनुष्य का सबसे पुराना पशु-मित्र है। यह पहला पशु है जिसे मनुष्य पालतू बनाने में समर्थ होता है। इसकी सहायता से मनुष्य हिरण और खरगोश इत्यादि का शिकार आसानी से कर सकता था। इस सहायता के बदले मे कुत्ते को मृत पशुओं के मास का एक भाग मिल जाता था। कालान्तर में मनुष्य ने यह पाया कि कुत्ते से अन्य बहुत से कार्य लिये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त एक पशु को पालतू बना लेने से उन्हें अन्य पशुओं को पालतू बनाने का भाव और प्रेरणा मिली।

कला—मध्य-पाषाणकालीन मानव मैग्डेलेनियनो के समान गुफाओं में अथवा तम्बुओ में रहता था परन्तु वह उनको चित्रों से सजाने में रुचि नही रखता था। यह ठीक है कि उसको रंगों से प्रेम था, परन्तु उसने इसकी अभिव्यक्ति गुफाओं की भित्तियों और छतों को पशुओ की आकृतियों से सज्जित करके नही वरन् छोटे-छोटे गोल पाषाण-खण्डों पर सरल चिह्न बनाकर की है (चित्र ३२, पृ० ६१)। सम्भवतः इनका निर्माण संकेत-चित्रों के रूप में हुआ है। इस समय तक कुछ वस्तुओं के चिह्न निश्चित रूप मे रूढ़ हो चुके थे। कलाकार वस्तु का चित्र बनाये बिना कुछ रेखाओं से उसका भाव प्रकट कर सकता था। इन चित्रों को देखने वाले व्यक्ति के इन रेखाओं के अर्थों से परिचित होने पर निश्चितरूप से इस विधि के द्वारा श्रम और समय बचाया जा सकता था। कम-से-कम धार्मिक और व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से ये संकेत-चित्र वही काम दे सकते थे जो पूर्ण चित्र देते थे। यह विधि सौन्दर्य प्रेम के ह्रास परन्तु बौद्धिक प्रगति की सूचक है। इसमे मनुष्य द्वारा भविष्य मे किये जाने वाले एक महान आविष्कार—लिपि—का बीज निहित है।

**लघुपाषाणोपकरण और संस्कृतियाँ**—परवर्ती-पूर्व-पाषाण काल में ही हमें हथियारों और औजारों को छोटा करने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगती है। फ्रांस और इटली में ग्रवेशियन युग, पूर्वी स्पेन में सौल्युट्रियन युग तथा उत्तरी अफ्रीका

लिए शेलफिश पर निर्भर रहते थे। इनके पाषाण उपकरण बहुत आदिम कोटि के—इयोलियों से मिलते-जुलते—थे।

(ई) किचेन-मिडेन (Kitchen Midden) संस्कृति—पिछले सौ वर्षों में फ्रांस, सार्डीनिया, पुर्तगाल, ब्राजील, जापान, मंचूरिया और डेनमार्क में प्रागैतिहासिक काल के अवशेषों के ऐसे ढेर मिले हैं जिनमें समुद्री प्राणियों, जैसे मछलियाँ, कछुए, घोंघे इत्यादि के खोल, थलचर पशुओं की अस्थियाँ तथा हड्डी, सींग और पाषाण के औज़ार और हथियार सम्मिलित हैं। डेनमार्क मे इन्हे किचेन-मिडेन (Kitchen Midden) कहते हैं। इनका समय अब से लगभग १०,००० वर्ष पूर्व माना जाता है।

(उ) मैग्लेमोज़ियन (Maglemosian) संस्कृति—परवर्ती-मध्य-पाषाणयुग मे दक्षिणी स्वीडन और नार्वे इत्यादि देशों में भी शीत कम हो जाने पर, पूर्व-पाषाण-कालीन जातियों के वंशज आकर रहने लगे। उनके प्रारम्भिक हथियार ऑरिग्नेशियन और मैग्डेलेनियन हथियारों के समान हैं परन्तु कुछ बाद में एक विशिष्ट संस्कृति का विकास हो जाता है जिसे मैग्लेमोजियन-संस्कृति (Maglemosian-Culture) कहा जाता है। इस संस्कृति के निर्माता अस्थियों से मछली पकड़ने के काँटे और हार्पून बनाते थे। वे रेनडियर के सींग मे बीच मे छेद करके और हत्था लगाकर कुल्हाड़ी बनाते थे और हड्डियों के उपकरणों पर ज्योमितिक चित्र भी बनाना जानते थे।

मध्य-पाषाणकाल की तिथि—पूर्व-पाषाणकाल की अपेक्षा मध्य-पाषाणकाल का तिथिक्रम निश्चित करना अधिक कठिन है। एक तो पूर्व-पाषाणकाल बहुत दीर्घ समय तक चला। दूसरे, उस युग मे मानव प्रगति की प्रक्रिया बहुत धीमी रही। उस समय विभिन्न प्रदेश की संस्कृतियों में अधिक अन्तर नही था। परन्तु मध्य-पाषाणकाल में प्रगति की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है और विभिन्न प्रदेशों में सांस्कृतिक भेद बढ़ जाता है। तीसरे, किसी प्रदेश मे पूर्व-पाषाणकालीन व्यवस्था का शीघ्र अन्त हो जाता है और किसी मे बहुत बाद में होता है। उदाहरण के लिए मेसोपोटामिया मे मध्य-पाषाणकालीन प्रवृतियाँ १८,००० ई० पू० में दिखाई देने लगती हैं जबकि डेनमार्क मे पूर्व-पाषाणकालीन व्यवस्था ८,००० ई० पू० तक बनी रहती है। इसी प्रकार मध्य-पाषाणकाल का अन्त भी विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग समय में होता है। पश्चिमी एशिया में मनुष्य कृषि-कर्म और पशु-पालन से छ-सात सहस्र ई० पू० में ही परिचित हो जाता है जबकि यूरोप में इन आविष्कारों का लाभ कई सहस्र वर्ष पश्चात् उठाया जाता है।

में केप्सियन युग के ऐसे बहुत से उपकरण मिलते है जिनका आकार बहुत छोटा है और आकृति ज्योमितिक है। ऐसे उपकरणों को 'लघुपापाणोपकरण' या माइ-

चित्र ३३ · लघुपापाणोपकरण

क्रोलिथ (Microliths) कहते है।(चित्र ३३) मध्य-पापाणकाल की लगभग सभी संस्कृतियों मे ज्योमितिक आकार के सुडौल परन्तु तीक्ष्ण माइक्रोलियों का निर्माण होता है। इनको लकड़ी या हड्डी के डण्डों में लगाकर भाँति-भाँति के दाँतेदार उपकरण बनाये जाते थे। यह परम्परा बहुत से स्थानों पर मध्य-पापाणकाल के पश्चात् नवपापाण और कांस्यकाल मे भी चलती रहती है।

(अ) अजीलियन (Azilian) संस्कृति--यूरोप की प्राचीनतम मध्य-पापाण-कालीन संस्कृति फ्रास के ल-मास दाजील (Le Masd' Azil) स्थान के नाम पर अजीलियन-संस्कृति कहलाती है। इसका विकास उन प्रदेशों में हुआ जहाँ पहले मैग्डेलेनियन संस्कृति फलफूल रही थी। इस सस्कृति के निर्माता गुफाओं में रहते थे। वे अपने चित्रित प्रस्तर-खण्डों और लघु हार्पूनों के लिए, जिनमे नीचे एक छेद होता था, प्रसिद्ध है। इनके पापाण हथियार मैग्डेलेनियन प्रकार के खुरचन-यन्त्र और नक्काशी-यन्त्र (Burin) है, परन्तु इनका आकार बहुत छोटा हो गया है।

(आ) तार्देनुआजियन (Tardenoisian) संस्कृति—प्रारम्भ मे यह अजी-लियन सस्कृति से सम्बन्धित प्रतीत होती है। इसके निर्माता ज्योमितिक आकार के लघु उपकरणो (Microliths) को हड्डो के डण्डो मे लगाकर हार्पून बनाते थे। उनके माइक्रोबरीन (Microburin) भी प्रसिद्ध है, परन्तु अस्थि-उपकरण बहुत कम मिलते है।

(इ) अस्तूरियन (Asturian) संस्कृति—यह केवल स्पेन और पुर्तगाल के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशो में मिलती है। इसके निर्माता अपनी उदरपूर्ति के

लिए, शेलफिश पर निर्भर रहते थे। इनके पाषाण उपकरण बहुत आदिम कोटि के—इयोलिथों से मिलते-जुलते—थे।

(ई) किचेन-मिडेन (Kitchen Midden) संस्कृति—पिछले सौ वर्षों में फ्रांस, सार्डीनिया, पुर्तगाल, ब्राजील, जापान, मंचूरिया और डेनमार्क में प्रागैतिहासिक काल के अवशेषों के ऐसे ढेर मिले हैं जिनमें समुद्री प्राणियों, जैसे मछलियाँ, कछुए, घोंघे इत्यादि के खोल, थलचर पशुओं की अस्थियाँ तथा हड्डी, सींग और पाषाण के औज़ार और हथियार सम्मिलित हैं। डेनमार्क में इन्हें किचेन-मिडेन (Kitchen Midden) कहते हैं। इनका समय अब से लगभग १०,००० वर्ष पूर्व माना जाता है।

(उ) मैग्लेमोजियन (Maglemosian) संस्कृति—परवर्ती-मध्य-पाषाणयुग में दक्षिणी स्वीडन और नार्वे इत्यादि देशों में भी शीत कम हो जाने पर, पूर्व-पाषाण-कालीन जातियों के वंशज आकर रहने लगे। उनके प्रारम्भिक हथियार ऑरिग्नेशियन और मैग्डेलेनियन हथियारों के समान हैं परन्तु कुछ बाद में एक विशिष्ट संस्कृति का विकास हो जाता है जिसे मैग्लेमोजियन-संस्कृति (Maglemosian-Culture) कहा जाता है। इस संस्कृति के निर्माता अस्थियों से मछली पकड़ने के काँटे और हार्पून बनाते थे। वे रैनडियर के सींग में बीच में छेद करके और हत्था लगाकर कुल्हाड़ी बनाते थे और हड्डियों के उपकरणों पर ज्योमितिक चित्र भी बनाना जानते थे।

मध्य-पाषाणकाल की तिथि—पूर्व-पाषाणकाल की अपेक्षा मध्य-पाषाणकाल का तिथिक्रम निश्चित करना अधिक कठिन है। एक तो पूर्व-पाषाणकाल बहुत दीर्घ समय तक चला। दूसरे, उस युग में मानव प्रगति की प्रक्रिया बहुत धीमी रही। उस समय विभिन्न प्रदेशों की संस्कृतियों में अधिक अन्तर नहीं था। परन्तु मध्य-पाषाणकाल में प्रगति की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है और विभिन्न प्रदेशों में सांस्कृतिक भेद बढ़ जाता है। तीसरे, किसी प्रदेश में पूर्व-पाषाणकालीन व्यवस्था का शीघ्र अन्त हो जाता है और किसी में बहुत बाद में होता है। उदाहरण के लिए मेसोपोटामिया में मध्य-पाषाणकालीन प्रवृत्तियाँ १८,००० ई० पू० में दिखाई देने लगती हैं जबकि डेनमार्क में पूर्व-पाषाणकालीन व्यवस्था ८,००० ई० पू० तक बनी रहती है। इसी प्रकार मध्य-पाषाणकाल का अन्त भी विभिन्न प्रदेशों में अलग-अलग समय में होता है। पश्चिमी एशिया में मनुष्य कृषि-कर्म और पशु-पालन से छः-सात सहस्र ई० पू० में ही परिचित हो जाता है जबकि यूरोप में इन आविष्कारों का लाभ कई सहस्र वर्ष पश्चात् उठाया जाता है।

में केप्सियन युग के ऐसे बहुत से उपकरण मिलते हैं जिनका आकार बहुत छोटा है और आकृति ज्योमितिक है। ऐसे उपकरणों को 'लघुपापाणोपकरण' या माइ-

चित्र ३३ : लघुपापाणोपकरण

क्रोलिथ (Microliths) कहते है।(चित्र ३३) मध्य-पाषाणकाल की लगभग सभी संस्कृतियों में ज्योमितिक आकार के सुडौल परन्तु तीक्ष्ण माइक्रोलिथों का निर्माण होता है। इनको लकड़ी या हड्डी के डण्डों मे लगाकर भाँति-भाँति के दाँतेदार उपकरण बनाये जाते थे। यह परम्परा बहुत से स्थानों पर मध्य-पाषाणकाल के पश्चात् नवपाषाण और कांस्यकाल में भी चलती रहती है।

(अ) अजीलियन (Azilian) संस्कृति—यूरोप की प्राचीनतम मध्य-पाषाण-कालीन संस्कृति फ्रांस के ल-मास दाजील (Le Masd' Azil) स्थान के नाम पर अजीलियन-संस्कृति कहलाती है। इसका विकास उन प्रदेशों में हुआ जहाँ पहले मैग्डेलेनियन संस्कृति फलफूल रही थी। इस संस्कृति के निर्माता गुफाओं मे रहते थे। ये अपने चित्रित प्रस्तर-खण्डों और लघु हार्पूनों के लिए, जिनमे नीचे एक छेद होता था, प्रसिद्ध है। इनके पाषाण हथियार मैग्डेलेनियन प्रकार के खुरचन-यन्त्र और नक्काशी-यन्त्र (Burin) है, परन्तु इनका आकार बहुत छोटा हो गया है।

(आ) तार्देनुआजियन (Tardenoisian) संस्कृति—प्रारम्भ मे यह अजी-लियन संस्कृति से सम्बन्धित प्रतीत होती है। इसके निर्माता ज्योमितिक आकार के लघु उपकरणों (Microliths) को हड्डी के डण्डों में लगाकर हार्पून बनाते थे। उनके माइक्रोबरीन (Microburin) भी प्रसिद्ध है, परन्तु अस्थि-उपकरण बहुत कम मिलते है।

(इ) अस्तूरियन (Asturian) संस्कृति—यह केवल स्पेन और पुर्तगाल के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में मिलती है। इसके निर्माता अपनी उदरपूर्ति

cation of Animals) के द्वारा स्वयं खाद्य-पदार्थों का 'उत्पादन' करना प्रारम्भ किया; दूसरे शब्दों में उसने प्रकृति को अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य किया। इसके अतिरिक्त उसने वनों से प्राप्त लकड़ी से नाव, मकान तथा कृषि-कर्म में काम आने वाले यन्त्रादि बनाना, अर्थात काष्ठ-कला (Carpentry), मृद्भाण्ड बनाना (Pottery) तथा कपड़ा बुनना (Weaving) इत्यादि कलाओं का आविष्कार भी किया। इन सब उद्योगों में उसे नये ढंग के मजबूत और तीक्ष्ण उपकरणों की आवश्यकता पड़ी। इसकी पूर्ति के लिए उसने पाषाण के पॉलिशदार औज़ार और हथियार (Polished Stone Implements) बनाना सीखा। इन उपकरणों के कारण पुरातत्त्ववेत्ता इस युग को नव-पाषाणकाल (Neolithic या New Stone Age) के नाम से पुकारते हैं।

## नव-पाषाणकालीन उपनिवेश और तिथिक्रम

नव-पाषाणकाल निश्चित रूप से होलोसीन युग में प्रारम्भ हुआ। अभी तक किसी स्थान से ऐसा संकेत नही मिला है जिससे यह प्रतीत हो कि इस काल की सभ्यता का जन्म प्लीस्टोसीन युग में ही हो गया था। पूर्वी मेडीट्रेनियन प्रदेश से प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि सर्वप्रथम नव-पाषाणकालीन सभ्यता के तत्त्व इसी प्रदेश में उदित हुए (मानचित्र ३)। इस प्रदेश में मानव समूह बहुधा, शताब्दियों तक ही नही सहस्राब्दियों तक, एक ही स्थान पर निवास करते रहते थे। उनकी मिट्टी, सरपत और प्रस्तर-खण्डों से बनी झोपड़ियाँ नष्ट हो जाती थीं, परन्तु वे उनके स्थान पर दूसरी बना लेते थे, जिससे पुरानी झोपड़ी के अवशेष नयी झोपड़ी के नीचे दब जाते थे। यह प्रक्रिया दीर्घ काल तक चलती रहती थी। धीरे-धीरे उस स्थान पर एक टीला (Tell) सा बन जाता था। यूनान, सीरिया, एशिया माइनर, तुर्किस्तान तथा ईरान के मैदान ऐसे टीलों से भरे पड़े हैं। इन टीलों की खुदाई करने पर ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक युग के अवशेष अविच्छिन्न रूप मे मिल जाते है। ऐतिहासिक युग के प्राचीनतम अवशेषों की तिथि प्राप्त अभिलेखों के आधार पर तीन सहस्र ईसा पूर्व या इससे एक-दो शताब्दी अधिक मानी जाती है। इससे पुराने अवशेष ताम्र और कांस्य काल के और सबसे पुराने अवशेष नव-पाषाणकाल के है।

**पश्चिमी एशिया के उपनिवेश**—सबसे पुराना नव-पाषाणकालीन उपनिवेश, जिसका पुरातत्त्ववेत्ता पता लगा पाये है, जोर्डन राज्य में जेरिको ग्राम है (मानचित्र ३)। कार्बन (१४) परीक्षण से पता चलता है कि अब से ९,००० वर्ष पूर्व यहाँ पर शिकार और फल-मूल संग्रह करने के अतिरिक्त कृषि-कर्म और पशुपालन द्वारा जीवनयापन करने वाले मनुष्य निवास कर रहे थे। अतः हम कह सकते

८

# नव-पाषाणकाल

जिस समय यूरोप में प्लीस्टोसीन युग के अन्त और होलोसीन युग के प्रारम्भ में, अर्थात मध्य-पाषाणकाल में, भूमि वनों से आच्छादित होती जा रही थी और वहाँ की पूर्व-पाषाणकालीन जातियाँ स्वयं को नवीन परिस्थितियों के अनुकूल बनाने का प्रयास कर रही थी, पश्चिमी एशिया और उत्तरी अफ्रीका में महत्त्वपूर्ण भौगोलिक परिवर्तन हो रहे थे। इन परिवर्तनों का प्रभाव मनुष्य के रहन-सहन पर भी पड़ा। अभी तक मनुष्य अपनी उदरपूर्ति के लिए पूर्णरूपेण प्रकृति पर अवलम्बित था। इस युग में उसने पहली बार कृषि कर्म (Agriculture) और पशुपालन (Domesti-

---

इस पृष्ठ के ऊपर स्वीट्जरलैण्ड के झीलों में बनाये गये नव-पाषाणकालीन मकानों का काल्पनिक चित्र दिया गया है (पृ० ७९)। दाहिनी ओर किनारे से मकान में जाने के लिए पुल बना है जिसका एक भाग रात में हटाया जा सकता था। झोपड़ियों के बाहर मछली पकड़ने के जाल लटक रहे हैं। एक ऊँची झोपड़ी में जाने के लिए सीढ़ी बनी है।

cation of Animals) के द्वारा स्वयं खाद्य-पदार्थों का 'उत्पादन' करना प्रारम्भ किया; दूसरे शब्दों में उसने प्रकृति को अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य किया। इसके अतिरिक्त उसने वनों से प्राप्त लकड़ी से नाव, मकान तथा कृषि-कर्म मे काम आने वाले यन्त्रादि बनाना, अर्थात काष्ठ-कला (Carpentry), मृद्‌भाण्ड बनाना (Pottery) तथा कपड़ा बुनना (Weaving) इत्यादि कलाओं का आविष्कार भी किया। इन सब उद्योगों में उसे नये ढंग के मजबूत और तीक्ष्ण उपकरणों की आवश्यकता पड़ी। इसकी पूर्ति के लिए उसने पाषाण के पॉलिशदार औज़ार और हथियार (Polished Stone Implements) बनाना सीखा। इन उपकरणों के कारण पुरातत्ववेत्ता इस युग को नव-पाषाणकाल (Neolithic या New Stone Age) के नाम से पुकारते हैं।

## नव-पाषाणकालीन उपनिवेश और तिथिक्रम

नव-पाषाणकाल निश्चित रूप से होलोसीन युग में प्रारम्भ हुआ। अभी तक किसी स्थान से ऐसा संकेत नहीं मिला है जिससे यह प्रतीत हो कि इस काल की सभ्यता का जन्म प्लीस्टोसीन युग में ही हो गया था। पूर्वी मेडीट्रेनियन प्रदेश से प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि सर्वप्रथम नव-पाषाणकालीन सभ्यता के तत्त्व इसी प्रदेश में उदित हुए (मानचित्र ३)। इस प्रदेश में मानव समूह बहुधा, शताब्दियों तक ही नहीं सहस्राब्दियों तक, एक ही स्थान पर निवास करते रहते थे। उनकी मिट्टी, सरपत और प्रस्तर-खण्डों से बनी झोपड़ियाँ नष्ट हो जाती थी, परन्तु वे उनके स्थान पर दूसरी बना लेते थे, जिससे पुरानी झोपड़ी के अवशेष नयी झोपड़ी के नीचे दब जाते थे। यह प्रक्रिया दीर्घ काल तक चलती रहती थी। धीरे-धीरे उस स्थान पर एक टीला (Tell) सा बन जाता था। यूनान, सीरिया, एशिया माइनर, तुर्किस्तान तथा ईरान के मैदान ऐसे टीलों से भरे पड़े है। इन टीलों की खुदाई करने पर ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक युग के अवशेष अविच्छिन्न रूप मे मिल जाते है। ऐतिहासिक युग के प्राचीनतम अवशेषों की तिथि प्राप्त अभिलेखो के आधार पर तीन सहस्र ईसा पूर्व या इससे एक-दो शताब्दी अधिक मानी जाती है। इससे पुराने अवशेष ताम्र और कास्य काल के और सबसे पुराने अवशेष नव-पाषाणकाल के हैं।

**पश्चिमी एशिया के उपनिवेश**—सबसे पुराना नव-पाषाणकालीन उपनिवेश, जिसका पुरातत्ववेत्ता पता लगा पाये हैं, जोर्डन राज्य में जेरिको ग्राम है (मानचित्र ३)। कार्बन (१४) परीक्षण से पता चलता है कि अब से ६,००० वर्ष पूर्व यहाँ पर शिकार और फल-मूल संग्रह करने के अतिरिक्त कृषि-कर्म और पशुपालन द्वारा जीवनयापन करने वाले मनुष्य निवास कर-रहे थे। अतः हम कह सकते

है कि पश्चिमी एशिया मे नव-पाषाणकाल का जन्म लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व हुआ। परन्तु यह स्मरणीय है कि इस ग्राम के निवासी मृद्भाण्डों और पॉलिशदार पाषाण उपकरणों से अपरिचित थे। यह अवस्था यहां पर ६,००० ई० पू० तक चलती रही। लगभग इसी समय पेलेस्टाइन में कार्मेल पर्वत की गुफाओं के पास कुछ मानव-समूह निवास कर रहे थे जिन्हें नतूफियन कहा जाता है। उनके पाषाण उपकरण मध्य-पाषाणकालीन यूरोपीय उपकरणों से साम्य रखते हैं, परन्तु इनके साथ एक नया उपकरण हँसिया मिलता है जिसका उपयोग घास काटने में किया जाता होगा। कुर्दिस्तान के जरमोग्राम (लगभग ४७५० ई० पू०) मे भी लगभग यही अवस्था मिलती है। यद्यपि इस स्थान के निवासियों ने मिट्टी की मूर्तियों को आग मे पकाना सीख लिया था तथापि उनके पात्र अभी तक लकड़ी या पत्थर के होते थे। ईरान में स्यालक ग्राम के प्रथम स्तर से, जिसकी तिथि कुछ बाद की है, हमे पहली बार कृषि-कर्म और पशुपालन के साथ कातने, बुनने और मृद्भाण्ड बनाने की कला का आविष्कार हो जाने के प्रमाण मिलते है। मध्य एशिया में अस्तराबाद नगर के समीप अनो (Anau) स्थान के प्राचीनतम स्तरों मे कृषि-कर्म, पशुपालन, मृद्भाण्ड कला और वस्त्र-निर्माण कला के चिह्न मिलते हैं।[1]

**मिश्र के उपनिवेश**—नील नदी के पश्चिमी किनारे पर फायूम (Fayum) स्थान से ४३०० ई० पू० के अवशेष मिले हैं जिनमे पालित पशुओं की अस्थियाँ, मछली पकड़ने के हार्पून, लकड़ी के हत्थों में माइक्रोलिथ लगाकर बनाये गये हँसिये (चित्र ३५,४), अनाज संग्रह करने के लिए बनाये गये गड्ढे (चित्र ३६) अर्थात अन्नागार, पाषाण की पॉलिशदार कुल्हाड़ियाँ, मृद्भाण्ड, पत्थर के तकुए और चकमक पत्थर के तीरों के सिरे सम्मिलित हैं। उनके तकुओं और करघों के अवशेषों से स्पष्ट है कि वे कपड़ा बुनना भी जानते थे। उनके अन्नागार विश्व इतिहास में अन्न संग्रह करने के प्रयास का प्रथम उदाहरण है। इस प्रकार के अन्नागार नील नदी के डेल्टे के उत्तर-पश्चिमी भाग में मेरिम्दे (Merimde) स्थान के उत्खनन मे, तत्कालीन गाँव के प्राय. हर घर मे, मिले है। मिश्र के मध्य में तासा (Taso) और नील नदी के पूर्व में अल-उमरी (Al Omri) स्थानों से भी नव-पाषाणकालीन अवशेष प्राप्त हुए है। यहाँ के निवासी कृषि-कर्म, पशुपालन, मृद्भाण्ड-कला और वस्त्र-निर्माण से परिचित थे। तासा के समीप बदरी (Badari) स्थान से प्राप्त अवशेषों की सभ्यता कुछ बाद की है। बदरी के निवासियों के व्यापारिक

---

१. बहुत से विद्वान् अनो के प्राचीनतम स्तरों को अन्य स्थानो के स्तरों से प्राचीन मानते है और यह विश्वास प्रकट करते हैं कि मध्य एशिया में ही नव-पाषाणकालीन संस्कृति और कृषि-कर्म का जन्म हुआ।

सम्बन्ध सीरिया से थे और वह लालसागर में उत्पन्न होने वाली कौड़ियों का प्रयोग करते थे।

**यूरोप में नव-पाषाणकाल**—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नव-पाषाण-कालीन संस्कृति के कुछ तत्त्वों का उदय अब से लगभग दस सहस्र वर्ष पूर्व पश्चिमी एशिया और मिस्र में हो चुका था। छः या सात सहस्र वर्ष पूर्व इसका विकसित रूप सामने आता है। यूरोप में नव-पाषाणकाल का प्रारम्भ कुछ सहस्र वर्ष पश्चात् होता है। इस महाद्वीप में सर्वप्रथम क्रीट और यूनान में और उसके पश्चात् मध्य-यूरोप और पश्चिमी प्रदेशों में कृषि-कर्म और पशुपालन इत्यादि उद्योग प्रचलित होते हैं। डेनमार्क, उत्तरी जर्मनी और स्वीडन में तो नव-पाषाणकाल का प्रारम्भ २००० ई० पू० में होता है। मध्य यूरोप के नव-पाषाणकालीन मानवों को डेन्यूबियन कहा जाता है। उनकी संस्कृति के विकास का विशेष परिचय कोलन लिन्डलथाल (Koln Lindelthal) ग्राम के उत्खनन से मिला है।

नव-पाषाणकालीन संस्कृति अपने चर्मोत्कर्ष के समय चीन से लेकर आयरलैण्ड तक फैली हुई थी। अब भी इस संस्कृति का सर्वथा अन्त नहीं हो पाया है। अफ्रीका, अमरीका, न्यूजीलैंड और अन्य कई प्रदेशों में बहुत सी आदिम जातियाँ हाल ही तक नव-पाषाणयुगीन जीवन व्यतीत कर रही थीं और कुछ अब भी कर रहीं है।

## नये आविष्कार

नव-पाषाणकालीन संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ लगभग सभी तत्कालीन जातियों में मिलती हैं, परन्तु उनका रूप जलवायु और अन्य प्रादेशिक विविधताओं के कारण स्थान-स्थान पर बदला हुआ मिलता है। उदाहरण के लिए किसी स्थान पर वस्त्र बनाने के लिए पटसन का प्रयोग किया गया है तो कहीं सूत का। कहीं पशुपालन को अधिक महत्त्व दिया गया है तो कहीं कृषि-कर्म को। इस पर भी नव-पाषाणकालीन सभ्यता के प्रमुख तत्त्वों की साधारण रूप से विवेचना की जा सकती है।

### कृषि-कर्म

सम्बन्ध सीरिया से थे और वह लालसागर में उत्पन्न होने वाली कौड़ियों का प्रयोग करते थे।

**यूरोप में नव-पाषाणकाल**—उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नव-पाषाण-कालीन संस्कृति के कुछ तत्त्वों का उदय अब से लगभग दस सहस्र वर्ष पूर्व पश्चिमी एशिया और मिश्र में हो चुका था। छ. या सात सहस्र वर्ष पूर्व इसका विकसित रूप सामने आता है। यूरोप में नव-पाषाणकाल का प्रारम्भ कुछ सहस्र वर्ष पश्चात् होता है। इस महाद्वीप में सर्वप्रथम क्रीट और यूनान में और उसके पश्चात् मध्य-यूरोप और पश्चिमी प्रदेशों में कृषि-कर्म और पशुपालन इत्यादि उद्योग प्रचलित होते हैं। डेनमार्क, उत्तरी जर्मनी और स्वीडन में तो नव-पाषाणकाल का प्रारम्भ २००० ई० पू० मे होता है। मध्य यूरोप के नव-पाषाणकालीन मानवों को डेन्यूबियन कहा जाता है। उनकी संस्कृति के विकास का विशेष परिचय कोल्न लिन्डलथाल (Koln Lindelthal) ग्राम के उत्खनन से मिला है।

नव-पाषाणकालीन संस्कृति अपने चर्मोत्कर्ष के समय चीन से लेकर आयरलैण्ड तक फैली हुई थी। अब भी इस संस्कृति का सर्वथा अन्त नहीं हो पाया है। अफ्रीका, अमरीका, न्यूजीलैण्ड और अन्य कई प्रदेशों में बहुत सी आदिम जातियाँ हाल ही तक नव-पाषाणयुगीन जीवन व्यतीत कर रही थीं और कुछ अब भी कर रहीं है।

## नये आविष्कार

नव-पाषाणकालीन संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ लगभग सभी तत्कालीन जातियों में मिलती है, परन्तु उनका रूप जलवायु और अन्य प्रादेशिक विविधताओं के कारण स्थान-स्थान पर बदला हुआ मिलता है। उदाहरण के लिए किसी स्थान पर वस्त्र बनाने के लिए पटसन का प्रयोग किया गया है तो कही सूत का। कही पशुपालन को अधिक महत्त्व दिया गया है तो कहीं कृषि-कर्म को। इस पर भी नव-पाषाणकालीन सभ्यता के प्रमुख तत्त्वों की साधारण रूप से विवेचना की जा सकती है।

## कृषि-कर्म

**कृषि-कर्म का आविर्भाव**—जैसा कि हम देख चुके है, नव-पाषाणकालीन क्रान्ति को जन्म देने वाली परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल की प्रगतिशील मैंग्डेलेनियन जाति नही, वरन् पश्चिमी एशिया, उत्तरी-पूर्वी अफ्रीका और सम्भवतः उत्तर-पश्चिमी भारत की अपेक्षाकृत पिछड़ी हुई जातियाँ थी। ये प्रदेश पूर्व-पाषाणकाल के अन्त मे घास के हरे-भरे मैदान थे। होलोसीन युग के प्रारम्भ में जब जलवायु में विश्वव्यापी परिवर्तन हुये और उत्तरी यूरोप हिम के स्थान पर वनों से आच्छा-

दिन हो गया तब इन प्रदेशों का जलवायु भी पहले से अधिक शुष्क हो गया और घास के हरे-भरे मैदान रेगिस्तान बनने लगे। इससे यहाँ के निवासियों को केवल शिकार पर जीवन व्यतीत करना असम्भव मालूम देने लगा और वे यह सोचने के लिए विवश हो गये कि खाद्य-सामग्री कैसे बढ़ाई जाये। इस विषय में पुरुष वर्ग तो अधिक सफलता प्राप्त न कर सका, परन्तु स्त्रियों ने, जो जंगली घासों के खाने योग्य बीज इत्यादि जमा करती रहती थीं, यह खोज की कि अगर इन बीजों को गीली मिट्टी में दबा दिया जाये तो कुछ महीनों में उन बीजों की कई गुनी मात्रा उत्पन्न हो जाती है। इससे कृषि-कर्म का जन्म हुआ। कृषि-कर्म का जन्म सर्वप्रथम किस प्रदेश में हुआ, इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है। पेरी महोदय ने यह श्रेय नील नदी की घाटी को दिया है और रूसी विद्वान् वैविलोव ने अफ़ग़ानिस्तान और उत्तर-पश्चिमी चीन को। आजकल अधिकांश विद्वान् पेलेस्टाइन के नतूफियनों को इसका आविष्कार करने वाला मानते हैं।

**मुख्य फसलें**—प्रकृति ने ऐसे बहुत से पौधे बनाये हैं जिनके बीज मनुष्य खा सकता है, जैसे गेहूँ, जौ, चना, चावल, बाजरा, मक्का, जमींकन्द और आलू इत्यादि। इनमें गेहूँ और जौ सबसे अधिक शक्तिवर्द्धक हैं। इनका संग्रह करने में भी दिक्कत नहीं होती और ये थोड़े बीज से ही काफी मात्रा में उत्पन्न हो जाते हैं।
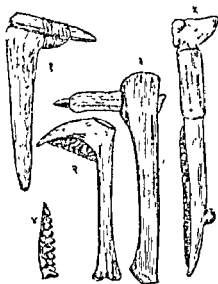
चित्र ३५ : नव-पाषाणकाल के कुदाल

इसके अतिरिक्त इनके उत्पादन में श्रम भी बहुत कम पड़ता है। केवल खेत जोतने, बोने और काटने के समय मेहनत करनी पड़ती है; शेष समय किसान

अन्य धन्धों में लगा रह सकता है। इसलिये प्राचीनकाल से ये दोनों अनाज मनुष्य के भोजन का प्रमुख अङ्ग रहे है। जिस समय नव-पाषाणकालीन महिलाओं ने इनकी ओर ध्यान दिया, ये केवल जंगली रूप में ही प्राप्य थे। धीरे-धीरे मनुष्य ने इन्हें संकर-उत्पत्ति (Cross-breeding) द्वारा आधुनिक रूप दिया।

**कृषि सम्बन्धी उपकरण**—नव-पाषाणकालीन मनुष्य को कृषि-कर्म में सहायता देने वाले कृत्रिम साधन बहुत कम थे। यहाँ तक कि वह हल से भी परिचित नहीं था। खेत जोतने का काम वह कुदाली (Hoe) से लेता था (चित्र ३५, १–३) या भूमि के उर्वर होने पर वैसे ही बीज डाल देता था। खेत काटने के लिए वह अस्थि या लकड़ी के दस्तों में माइक्रोलिथ लगाकर हँसिए बनाता था (चित्र ३५,४–५)। उसे एक फ़सल कटने से लेकर दूसरी फ़सल कटने तक, अर्थात लगभग एक वर्ष तक, पहली फ़सल के अनाज पर निर्भर रहना पड़ता था। इसलिए उसके लिए आवश्यक हो गया कि वह अन्नागार (Granary) बनाकर अनाज का संग्रह करे। नव-पाषाणकालीन अन्नागार फायूम (चित्र ३६), मेरिम्द तथा कोल्न-लिन्डलथाल इत्यादि स्थानों पर मिले है। इसी प्रकार अनाज पीसने के लिये चक्कियाँ और रोटी पकाने के लिए चूल्हों का निर्माण भी आवश्यकतावश किया गया।

चित्र ३६ : फायूम से प्राप्त अन्नागार

**कृषि-कर्म की समस्याएँ**—जलवायु सम्बन्धी प्रादेशिक विविधताओं के कारण नव-पाषाणकाल में विभिन्न प्रदेशों के कृषकों ने विभिन्न प्रयोग किये। उदाहरण के लिये ईरान और मेसोपोटामिया के कृषक वर्षा पर निर्भर नही रह सकते थे, इसलिये वहाँ कृत्रिम सिंचाई-व्यवस्था अन्य स्थानों की अपेक्षा पहले की जाने लगी। यूरोप मे, इसके विपरीत, वर्षा पर निर्भर रहा जा सकता था। परन्तु वहाँ की भूमि दो तीन फ़सल के बाद शक्तिहीन हो जाती थी। डेन्यूबियन इस कठिनाई से

मुक्ति पाने के लिए खेत को दो-तीन फ़सल के बाद छोड़ देते थे। कुछ वर्षों में, जब आसपास की सब भूमि अनुर्वर हो जाती थी तो वह किसी अन्य स्थान पर जा बसते थे। यह विधि आज भी अफ्रीका की बहुत सी जातियाँ और आसाम की नागा जाति अपनाये हुये है। परन्तु इस विधि मे कठिनाई बहुत आती हैं। इसलिये कुछ स्थानो पर भूमि की उर्वरता लौटाने के लिये कृत्रिम उपायों की खोज होने लगी। डेन्यूबियनों ने यह खोज की कि अगर खेत मे जगली घास उगने दी जाय और फिर उसे जला दिया जाय तो भूमि की उर्वरता लौट आती है। यूनान और बल्कान-प्रदेश की जातियों ने पशुओ और मानवो के मलमूत्र से भूमि की उर्वरता लौटाने की विधि का आविष्कार किया।

## पशुपालन

**पशुपालन का आविर्भाव**—पश्चिमी एशिया और मेडीटेरेनियन-प्रदेश में रहने वाली जातियाँ कृषि के साथ पशुपालन भी करती थीं। यह उद्योग भी तत्कालीन जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण अस्तित्व में आया। जब इन प्रदेशों में वर्षा कम होने लगी और घास के मैदान रेगिस्तानों मे बदलने लगे तो यहाँ के वन्य पशु और मनुष्य, दोनो ही नखलिस्तानों के समीप रहने के लिए बाध्य हो गये। इनमें बहुत से पशु जैसे, गाय, भैंस, भेड़, बकरी तथा सुअर इत्यादि जो घास और चारा खाकर रह सकते थे, मानव आवासो के निकट चक्कर काटने लगे। इस समय तक मनुष्य इन पशुओं से काफी परिचित हो गया था। वह यह भी समझ गया था कि अगर पशु उसके समीप रहेंगे तो वह जब चाहे उनका शिकार कर सकता है। इसलिये उसने उनको अपने पास से भगाने के स्थान पर निकट आने के लिये प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया। वह अपने खेत से उत्पन्न चारा उन्हें खाने के लिए देने लगा और हिंस्र प्राणियों से उनकी रक्षा करने लगा। धीरे-धीरे ये पशु पूर्णरूपेण उस पर निर्भर रहने लगे। इस प्रकार पशुपालन उद्योग अस्तित्व मे आया।

*पहले पशुपालन या कृषि?*—मनुष्य ने पहले पशुपालन प्रारम्भ किया या कृषि, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। बहुत से विद्वान् मानते हैं कि कुछ स्थानों पर पशुपालन और कुछ स्थानो पर कृषि-कर्म साथ-साथ आविर्भूत हुए। *इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने, जिनकी संख्या बहुत कम है, यह सिद्ध करने का* प्रयास किया है कि पशुपालन का जन्म कृषि से पहले हुआ। परन्तु अधिकांश विद्वान्,

सुलझ गई। अब उसे शिकार की खोज में वनों में भटकना आवश्यक नहीं रहा। वह जब चाहे अपने पालित पशुओं को मारकर मांस प्राप्त कर सकता था। दूसरे, वह इनसे खाल और चमड़ा प्राप्त करता था जिनसे वस्त्र, तम्बू और भाण्ड जैसी उपयोगी वस्तुएँ बनती थीं। पशुओं के सींगों से औजार, हथियार और आभूषण बनते थे। तीसरे, उसने यह भी खोज की कि जिस खेत में पशु चरते रहते हैं उसमें अच्छी उपज होती है। धीरे-धीरे वह गोबर की खाद की महत्ता को समझ गया। चौथे, उसने भेड़ों से ऊन प्राप्त करके अपनी वस्त्र समस्या को सुलझाया। इससे कातने और बुनने की कलाएँ अस्तित्व मे आईं। पाचवें, जब वह पशुओं के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हो गया तो उसने यह जाना कि उनका दूध भोजन के रूप मे प्रयुक्त हो सकता है। पशुओं पर माल लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना यद्यपि उसने अपेक्षाकृत बाद में सीखा, तथापि यह भी पशु-पालन का एक अति महत्त्वपूर्ण लाभ था इसमें सन्देह नहीं।

**पशुपालन का प्रभाव**—प्रारम्भ मे पशुपालन से समाज के आर्थिक जीवन मे अधिक परिवर्तन नही हुआ। लेकिन पालित पशुओ की संख्या बढ़ जाने पर नई-नई समस्याएँ सामने आईं। पशुओं को चराना, जंगलों को जलाकर चरागाह बनाना, चारे के लिए विशेष फसल उगाना तथा ऐसे ही अन्य बहुत से कार्य थे जिनके कारण कुछ व्यक्ति अपना सारा समय पशुपालन में ही लगाने लगे। कुछ समूहो के आर्थिक जीवन का मूलाधार पशुपालन ही हो गया।

यहाँ पर यह स्मरणीय है कि नव-पाषाणकाल में खाद्य-सामग्री का 'उत्पादन' हुआ, इस का अर्थ यह नहीं है कि पूर्व-पाषाणकाल की फल-मूल और शिकार द्वारा भोजन संग्रह करने की प्रथा एकदम बन्द हो गई। शिकार, मछली पकड़ना तथा फल-मूल का संग्रह इस युग मे भी थोड़ा बहुत चलता रहा। लेकिन धीरे-धीरे यह कार्य विशिष्ट व्यवसाय बनने लगे। आज भी मछली पकड़कर जीवन व्यतीत करने वाले मछेरे और शिकार करके उदरपूर्ति करने वाले व्याधों का पृथक व्यावसायिक श्रेणियों के रूप में अस्तित्व है।

## मृद्भाण्ड कला

**मृद्भाण्ड कला का आविष्कार**—नव-पाषाणकालीन मानव केवल खाद्य-पदार्थों को अधिक मात्रा में उत्पन्न करके ही सन्तुष्ट नही हो गया। उसने कुछ ऐसी वस्तुओं का उत्पादन भी किया जो प्रकृति से प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त नहीं होतीं। इनमें मिट्टी से बरतन, सूत, पटसन और ऊन से वस्त्र और काष्ठ से नाव और कृषि-कर्म सम्बन्धी यन्त्रों का निर्माण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कृषि-कर्म और पशुपालन के कारण खाद्य-सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलने लगी थी परन्तु इसका उपयोग करने के लिए पात्रों का अभाव था। अभी तक मनुष्य के पात्र काष्ठ और

पाषाण से बनते थे, परन्तु इनकी सहायता से भोजन पकाना बहुत कठिन था। इस कठिनाई को दूर करने के लिए मनुष्य ने मिट्टी के बर्तन बनाने की कला का आविष्कार किया। यह आविष्कार कब और कैसे हुआ यह कहना कठिन है। हो सकता है किसी समय किसी स्त्री ने यह देखा हो कि मिट्टी से लिपी हुई टोकरी के आग मे जल जाने पर टोकरी के आकार का पकी हुई मिट्टी का बरतन बच रहता है, और इस अनुभव से लाभ उठाकर उसने मृद्‌भाण्ड बनाने की कला को जन्म दिया हो। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यह आविष्कार मध्य-पाषाणकाल मे ही हो गया था परन्तु इतना निश्चित है कि प्रचुर मात्रा मे मिट्टी के बर्तन नव-पाषाण-काल मे ही बने।

**कुम्हार की कला की जटिलता**—मृद्‌भाण्ड बनाना एक रासायनिक-प्रक्रिया है। गीली मिट्टी, जिससे बर्तन बनते हैं, पानी मे घुल जाती है और सुखा लेने के बाद भी आसानी से टूट जाती है। लेकिन जब इसे ६००°C या इससे भी अधिक गर्म अग्नि मे पकाया जाता है तो इसका लसलसापन मिट जाता है और यह लगभग पत्थर के समान कठोर हो जाती है। अब यह न तो पानी में घुलती है और न बिना जोर लगाये इसे तोड़ा जा सकता है। वस्तुतः कुम्हार की कला का मूल इसी तथ्य मे निहित है कि वह लसलसी मिट्टी को कोई भी आकार दे सकता है और आग मे पकाकर उस आकार को स्थायी बना सकता है।

चित्र ३७ : नव-पाषाणकालीन मृद्‌भाण्ड

कुम्हार की कला प्रारम्भ से ही बहुत जटिल थी। उसे बर्तन बनाने के लिये

अच्छी मिट्टी का चुनाव करना पड़ता था जिससे पकते समय वर्तन चटक न जाय। दूसरे शब्दों में उसे अच्छी मिट्टी की पहिचान से परिचित होना आवश्यक था। दूसरे, उसे यह जानना आवश्यक था कि गीली मिट्टी से बने बर्तनों को पकाने के प्रथम सुखाना होता है। मिट्टी से इच्छित आकार के भाण्डों का निर्माण करना भी कम कठिन नहीं था। प्रारम्भ में मनुष्य ने उसी आकार के बर्तन बनाये जिस आकार के उसके पत्थर और लकड़ी के वर्तन होते थे। धीरे-धीरे उसने यह खोज की कि लसलसी मिट्टी से अनेक आकार के बर्तन बनाये जा सकते हैं। परन्तु उस समय तक चाक (Potters' wheel) का आविष्कार नहीं हो पाया था। इसलिये वह अपनी कल्पना को सदैव मूर्तरूप नहीं दे सकता था। चाक के अभाव में वह सुराही और घड़ा इत्यादि का निर्माण करने के लिए 'छल्ला विधि' (Ring method) का प्रयोग करता था। इसमें बर्तन का तला बनाकर उसके ऊपर मिट्टी की छल्ला-कार पट्टियाँ एक दूसरे के ऊपर रखकर जोड़ दी जाती थी। यह विधि बहुत कठिन थी परन्तु चाक के अभाव में इसके बिना वर्तन बनाना असम्भव था।

बर्तनों के आग में पक जाने पर मिट्टी का रंग बदल जाता है। यह रंग मिट्टी की किस्म, आग की तेजी और पकाने के ढंग तथा अन्य कई बातों पर निर्भर रहता है। नव-पाषाणकालीन मनुष्य ने यह सीख लिया था कि किस प्रकार बर्तनों को इच्छित रंग दिया जा सकता है। आग की लपट लगने से बरतन काले पड़ जाते थे। इस कठिनाई को दूर करने के लिए पश्चिमी एशिया में भट्टी (Oven) का आविष्कार हुआ जिसमें ६००°C से १०००°C तक ताप देने पर भी धुंआ लगकर वर्तन काले नहीं पड़ते थे। यूरोप में इस आविष्कार का लाभ लौह-युग के पर्व नहीं उठाया जा सका।

**मृद्भाण्ड कला का प्रभाव**—प्रारम्भिक मनुष्य के लिए लसलसी मिट्टी का प्रस्तरसम हो जाना जादू से कम नहीं था। पत्थर से उपकरण बनाते समय मनुष्य केवल वही आकार उत्पन्न कर सकता है जो उतने बड़े पाषाण-खण्ड में सम्भव हों। यही बात सीग और हड्डियों के साथ है। परन्तु मिट्टी के बर्तन बनाते समय यह बन्धन नहीं होता। इनके बनाने में मनुष्य अपनी कल्पना से काम ले सकता है। इसीलिए मृद्भाण्ड कला ने मनुष्य की विचार-शक्ति को बहुत प्रभावित किया।

## कातने और बुनने की कला

मिश्र और पश्चिमी एशिया के नव-पाषाणकालीन अवशेषों से पता चलता है कि इस युग में कपड़ा बुनने की कला का आविष्कार हो गया था। सूत, पटसन और ऊन से बने वस्त्र पूर्व-पाषाणकाल के खाल और पत्तियों से बने वस्त्रों का स्थान लेने लगे थे। कपड़ा बुनने की कला भी बहुत ही जटिल है। इसका

सींग की मूठ लगा दी जाती थी। इस प्रकार का हथियार पूर्व-पाषाणकाल में अज्ञात था। पुराने पुरातत्ववेत्ता इसे नव-पाषाणकाल का प्रतीक मानते थे। इससे मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त हो गई कि वह वनों को काट सके और लकड़ी को चीर सके। इससे काष्ठकला (Carpentry) का विकास हुआ। अब मनुष्य लकड़ी का उपयोग नाव, मकान और अन्य वस्तुएँ बनाने में करने लगा। कुल्हाड़ी
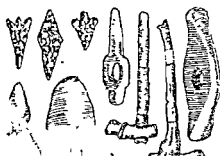
आविष्कार अन्य कई आविष्कारो और उपकरणों के अस्तित्व में आये बिना सम्भव नही था। सर्वप्रथम, इसके लिए एक ऐसे द्रव्य की आवश्यकता होती है जिससे सूत बन सके। मिश्र और यूरोप में इसकी पूर्ति पटसन से की गई। दूसरा द्रव्य कपास था। भारत मे इसका प्रयोग ३००० ई० पू० मे हो रहा था। लगभग इसी समय मेसोपोटामिया मे ऊन का प्रयोग हो रहा था। इससे स्पष्ट है कि कपडा उद्योग के अस्तित्व में आने के लिए विशिष्ट प्रकार के पशुओ का पालन और उन पौधो की खेती करना आवश्यक था जिनसे उपर्युक्त द्रव्य प्राप्त हो सके। दूसरे, *वस्त्र निर्माण के लिए आवश्यक था कि सूत कातने के लिए* चर्खा और बुनने के
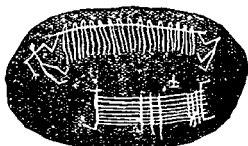
चित्र ३८

लिए कर्घा हों (चित्र ३८)। पुरातत्ववेत्ताओं को उत्खनन में चर्खे के कुछ अश प्राप्त हुए हैं। कर्घे का आविष्कार एशिया मे नव-पाषाणकाल में ही हो गया था। यह आविष्कार, जिसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है, विश्व के महानतम आविष्कारो मे से एक है।

## काष्ठकला और नये उपकरण

**पॉलिशदार उपकरण**—हम देख चुके है कि नव-पाषाणकाल में यूरोप वनों से आच्छादित था। उत्तरी अफ्रीका, पश्चिमी एशिया और उत्तर-पश्चिमी भारत का जलवायु भी, पूर्व-पाषाणकाल से अधिक शुष्क होने के बावजूद, आधुनिक काल से अधिक नम था। इसलिये इन प्रदेशों मे वन्य काष्ठ का अब जैसा अभाव न था। नव-पाषाणकालीन मानव ने इस काष्ठ का उपयोग करने के लिये और अपने *नये उद्योगो मे, जिनका हमने ऊपर विवेचन किया है,* सफलता प्राप्त करने के लिए नये पाषाणोपकरण बनाये। पूर्व-पाषाणकाल के मानव के हथियार और औज़ार बेडौल और खुरदरे होते थे। परन्तु नव-पाषाणकालीन मानव ने रगड़-रगड़ कर चिकने, चमकदार और सुडौल हथियार बनाने की विधि का आविष्कार किया। उनके हथियारों में कठोर पत्थर की **पॉलिशदार कुल्हाड़ी** (Polished Stone Axe) प्रमुख है (चित्र ३९)। इसको बनाने के लिए प्रस्तर-खण्ड के एक सिरे को घिसकर धारदार बनाया जाता था और दूसरी ओर उसमे लकड़ी या

सींग की मूठ लगा दी जाती थी। इस प्रकार का हथियार पूर्व-पाषाणकाल में अज्ञात था। पुराने पुरातत्ववेत्ता इसे नव-पाषाणकाल का प्रतीक मानते थे। इससे मनुष्य को यह सुविधा प्राप्त हो गई कि वह वनों को काट सके और लकड़ी को चीर सके। इससे काष्ठकला (Carpentry) का विकास हुआ। अब मनुष्य लकड़ी का उपयोग नाव, मकान और अन्य वस्तुएँ बनाने में करने लगा। कुल्हाड़ी
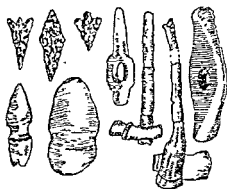
चित्र ३९ : नव-पाषाणकालीन पॉलिशदार उपकरण

ही परिवर्तित रूप में युद्धों में काम आने वाली गदा, परशु और मुंगरी बनी। गदाएँ पश्चिमी एशिया में गेंदाकार और उत्तरी अफ्रीका तथा यूरोप में तश्तरी के आकार की बनती थीं। युद्धों में गदाओं के साथ भाले और धनुष-बाण का प्रयोग चलता रहा। भालों और तीरों के पाषाण-निर्मित सिरे सर्वत्र प्रचुरता से मिलते है (चित्र ३९)।

**अन्य उपकरण**—नव-पाषाणकालीन मानव का बौद्धिक स्तर पूर्व-पाषाण-कालीन मानव से बहुत ऊँचा था। उसने अपने पूर्वजों की भाँति पाषाण, सींग, अस्थि और हाथी दाँत इत्यादि से छेनी, आरी, हार्पून, सुई, पिन, सुआ, कुदाली, कंघे, मनके और चाकू इत्यादि का निर्माण ही नहीं किया वरन् अपनी बुद्धि का प्रयोग करके अन्यान्य औज़ार और हथियार भी बनाये। उसने ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी बनाई (चित्र ३४, पृ० ६६), झीलों तथा नदियों को पार करने के लिए नाव का (चित्र ३४, पृ० ६६) आविष्कार किया। फसल काटने के लिए हंसिया (चित्र ३५, ४-५), सूत कातने के लिए तकली और चर्खे तथा बुनने के लिए कर्घे का निर्माण किया। वह सम्भवतः मिट्टी और लकड़ी के ढोल भी बनाता था जिन पर पशुओं की खाल चढ़ी होती थी। रीड की शाखों से सीटियाँ बनाने की कला भी उसे ज्ञात थी।

## नवीन आविष्कारों का प्रभाव

**जनसंख्या में वृद्धि**—ऊपर हमने नव-पाषाणकाल में किये गये जिन आविष्कारों

का विवेचन किया है, उन्होंने मानव जीवन में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। पूर्व-पाषाण काल मे, जो कई लाख वर्ष तक चला मनुष्य सदैव प्रकृति पर निर्भर रहा। वह केवल उन्ही पशुओ का शिकार कर सकता था जो उसे वनों में मिल जाते थे और उन्ही फलों और कन्द-मूलों का संग्रह कर सकता था जो वन्यावस्था मे उत्पन्न होते थे। इससे दो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती थी। एक तो जन-सख्या उससे अधिक नही बढ पाती थी, जितनी की उदरपूर्ति उपलब्ध वन्य पशुओ और फल मूलो से हो सकती थी। दूसरे, यदि किसी प्रदेश मे किसी समय जलवायु मे परिवर्तन हो जाता था और उस जलवायु में पोषित होने वाले पशु और फलमूल विलुप्त हो जाते थे तो वहाँ के मानव समूहों को अपना अस्तित्व बनाये रखना असम्भव हो जाता था। मैंग्डेलेनियनो के साथ, जो पूर्व-पाषाणकाल की सर्वाधिक सुसस्कृत जाति थी, यही हुआ (पृ०६१)। नव-पाषाणकाल मे मनुष्य ने प्रथम बार यह ज्ञान प्राप्त किया कि किस प्रकार कृषि और पशु-पालन के द्वारा प्रकृति को उससे अधिक खाद्य-सामग्री प्रदान करने के लिए बाध्य किया जा सकता है जितनी वन्यावस्था मे उत्पन्न होती थी। अब किसी ग्राम के निवासियो की जनसंख्या बढ़ जाने पर केवल दो-चार अतिरिक्त खेतो मे फ़सल पैदा करनी पड़ती या पालित पशुओं की संख्या बढानी होती थी। इस व्यवस्था की सफलता का सबसे सबल प्रमाण नव-पाषाणकाल में जनसंख्या मे वृद्धि होना है। इस काल के मानव समूह पूर्व-पाषाणकाल और मध्य-पाषाणकाल के मानव समूहो से बड़े और संख्या मे अधिक थे। दूसरे, इसकाल मे मानव का निवास उन प्रदेशों में भी दिखाई देता है जहाँ पूर्व-पाषाणकाल में या तो उसका अस्तित्व बिल्कुल न था और यदि था तो बहुत कम सख्या में। तीसरे, पूर्व-पाषाण काल के प्रस्तरित मानव-अवशेषो की सख्या कुछ ही सौ है जबकि नव-पाषाण-काल के अवशेष सहस्रों की संख्या में उपलब्ध होते है। नव-पाषाणकाल में जन-सख्या में वृद्धि होने मे एक और तथ्य से सहायता मिली। पूर्व-पाषाणकाल मे बच्चे आर्थिक दृष्टि से भार थे। वे शिकार मे तो सहायता दे नही सकते थे, उल्टे अपनी उदरपूर्ति के लिए भोजन की माग करते थे। नव-पाषाणकाल मे बच्चों का होना लाभप्रद हो गया। वे पशुओ को चरागाहों में ले जा सकते थे, खेतो की देखभाल कर सकते थे और अन्य कई प्रकार मे परिवार की आर्थिक गति-विधि मे हाथ बँटा सकते थे।

**स्थायी जीवन का प्रारम्भ**—बहुधा यह विश्वास किया जाता है कि पूर्व-पाषाणकाल मे मनुष्य शिकार की खोज में घूमता-फिरता रहने के कारण खाना-बदोश (यायावर) था, परन्तु नव-पाषाणकाल मे कृषि-कर्म प्रारम्भ-करते ही स्थायी रूप से घर बनाकर रहने लगा। यह विश्वास भ्रामक है। आखेट का यायावर होने से और कृषि-कर्म का स्थायी जीवन व्यतीत करने से कोई निश्चित सम्बन्ध

नहीं है। मैग्डेलेनियन शिकारी थे, परन्तु निश्चित रूप से कई सन्ततियों तक एक ही गुफा में निवास करते रहते थे। दूसरी ओर नव-पाषाणकाल में, कम-से-कम उन प्रदेशों मे, जहाँ भूमि की उर्वरता दो तीन फ़सल के बाद कम हो जाती थी मनुष्य को कृषि-कर्म करते हुए भी यायावर जीवन व्यतीत करना पड़ता था। फिर भी यह सत्य है कि उन प्रदेशों में, जहाँ की भूमि की उर्वरता प्रतिवर्ष बाढ ग्राने के कारण सदैव बनी रहती थी और जहाँ मनुष्य ने खाद देकर उर्वरता लौटाने की विधि ढूंढ़ निकाली थी, वहाँ वह घर बनाकर स्थायी जीवन व्यतीत कर सकता था ग्रौर करता था।

**मकानों के प्रकार**—पूर्व-पाषाणकालीन मानव घर बनाना नहीं जानता था। उसका ग्राश्रय-स्थान गुफाएँ थीं। लेकिन नव-पाषाणकालीन मानव ने सीढ़ी, घिरनी (Pulley) ग्रौर चूल (Hinge) इत्यादि का ग्राविष्कार कर लिया था। इससे उसे रहने के लिए स्थायी मकान बनाने में बहुत सहायता मिली। मिश्र में मकान बनाने में रीड (नरकुल) का प्रयोग होता था (चित्र ४०)। पश्चिमी एशिया ग्रौर यूरोप में घर प्रारम्भ में मिट्टी और टट्टर तथा बाद में कच्ची ईंटों के बनाये जाते थे। ये बहुत शीघ्र नष्ट हो जाते थे। स्वीट्ज़रलैण्ड में झीलों पर बनाये गये मकान विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं (चित्र ३४, पृ० ६६)। इन मकानो के ग्रवशेष १८५४ ई० मे, जब ग्रसाधारण गर्मी पड़ने के कारण झीलो का पानी बहुत सूख गया, प्रकाश मे ग्राये। ये मकान लकड़ी के लट्ठों को झील के पानी में गाड़ कर बनाये गये थे। इनमें ग्राने-जाने के लिए सीढ़ियों का प्रवन्ध था। इनकी दीवारो को टट्टर पर मिट्टी का प्लास्टर करके ग्रौर छत को भूसे, छाल ग्रौर रीड (नरकुल) से बनाया गया था। इसके निर्माता निश्चित रूप से कुशल बढई रहे होंगे। ऐसे जलगृह फ्रांस, स्कॉटलैण्ड, ग्रायरलैण्ड, इटली, रूस, दक्षिणी ग्रौर उत्तरी ग्रमरीका तथा भारत में भी प्राप्त हुए हैं। ग्राजकल भी जावा, सुमात्रा ग्रौर न्यूगिनी में इनका प्रचलन है। सुरक्षा ग्रौर सफाई की दृष्टि से निश्चित रूप से ये मकान बहुत उत्तम थे।

चित्र ४० : प्रागैतिहासिक मिश्र की रीड की एक झोपड़ी का चित्र
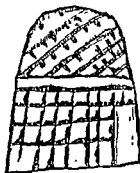
## सामूहिक जीवन

**ग्रामों की योजना**—नव-पाषाणकालीन मानव छोटे-छोटे ग्रामों में रहते थे। इनका क्षेत्रफल प्राय: डेढ़ एकड़ से दस एकड़ तक होता था। जेरिको ग्राम

(प्रथम स्तर) का क्षेत्रफल ८ एकड़ था। एक ग्राम में साधारणतः आठ-दस से लेकर तीस-पैंतीस तक घर होते थे। इनके निवासियों को सड़कें और गलियाँ मिल-जुलकर बनानी पड़ती थीं। बहुधा ग्राम को सुरक्षा की दृष्टि से खाई या चहारदिवारी से घेर दिया जाता था। जेरिको ग्राम की खाई २७ फुट चौड़ी और ५ फुट गहरी थी। खाइयों का निर्माण भी गाँव के व्यक्ति सामूहिक रूप से करते होंगे। मकान, सड़कों और गलियों के दोनों ओर व्यवस्थित योजना के अनुसार बनाये जाते थे। यह भी उनकी सामाजिक-जीवन की विकसित अवस्था का प्रमाण है।

**स्त्रियों और पुरुषों में श्रम-विभाजन**—नव-पाषाणकालीन समाज में स्त्रियों और पुरुषों में श्रम-विभाजन (Division of Labour) हो गया था। जैसा कि हमने देखा है, इस काल के अधिकांश आविष्कार स्त्रियों ने किये थे। उन्हीं को कृषि-कर्म, मृद्‌भाण्ड कला, कताई और बुनाई के आविष्कारों का श्रेय प्राप्त है। इसलिये यह अनुमान किया जाता है कि उन्हें अधिकांश पारिवारिक कार्यों को स्वयं करना होता था। उन पर खेत जोतने, आटा पीसने, खाना बनाने, सूत कातने, कपड़ा बुनने तथा आभूषण और बरतन इत्यादि बनाने का उत्तरदायित्व था। पुरुष खेती के काम में स्त्रियों की सहायता करते थे तथा पशुओं का पालन और शिकार करते थे। औजार और हथियार भी वही बनाते थे। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक कार्य करना पड़ता था। परन्तु इसके बदले में वे सामूहिक जीवन में प्रमुख भाग लेती थीं। समाज की व्यवस्था मातृसत्तात्मक (Matriarchal) थी। विशेषतः जिन समूहों में कृषि-कर्म प्रमुख उद्यम था, स्त्रियों को समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। परन्तु जिन स्थानों पर पशुपालन प्रमुख उद्यम था, वहाँ पुरुषों को अधिक सत्ता मिली हुई थी।

**परिवारों और ग्रामों की आत्म-निर्भरता**—स्त्रियों और पुरुषों में श्रम-विभाजन हो जाने पर भी समाज में सम्मिलित रूप से औद्योगिक विशिष्टीकरण (Specialisation of Industries) नहीं हो पाया था। प्रत्येक परिवार को आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु, खाद्य-सामग्री, मृद्‌भाण्ड, कपड़ा, औजार, हथियार इत्यादि स्वयं उत्पन्न करनी या बनानी होती थी। परिवार के समान गाँव भी आत्म-निर्भर होते थे। गाँव के सब व्यक्तियों को आवश्यक खाद्य-सामग्री तथा पाषाण-खण्ड, लकड़ी और अन्य वस्तुएँ स्वयं जुटानी पड़ती थी। गावों की आत्म-निर्भरता और विशिष्टीकरण का अभाव नव-पाषाणकालीन समाज की आर्थिक-व्यवस्था की विशेषता है। इसका प्रमुख कारण था तत्कालीन युग में यातायात के साधनों का अभाव। गाड़ियों के अभाव में स्त्रियाँ माल ढोने का कष्टकर कार्य करती थी इसलिये एक गाँव से दूसरे गाँव को माल भेजना आसान कार्य नहीं था। दूसरे, नव-पाषाणकालीन ग्राम बहुधा घने जंगलों, नखलिस्तानों या पहाड़ों की घाटियों में अवस्थित थे। इसलिये उनका

आवश्यक वस्तुओं के लिये पराश्रित रहना असम्भव था। परन्तु आत्मनिर्भरता का अर्थ पारस्परिक-सम्पर्क का अभाव नही है। नव-पाषाणकालीन संस्कृति के मूल तत्वों की समस्त विश्व मे समरूपता और मेडीटेरेनियन समुद्र से प्राप्त होने वाली कौड़ियों का मध्य यूरोप मे प्रयोग इसका प्रमाण हैं। परन्तु यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि इस प्रकार का सम्पर्क अथवा आदान-प्रदान उनकी आर्थिक व्यवस्था का आवश्यक अंग नही था। इससे तत्कालीन ग्रामों की आत्म-निर्भरता में कोई कमी नहीं आती।

**सामाजिक संगठन**—नव-पाषाणकाल में सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने वाली शक्ति क्या थी, यह कहना बड़ा कठिन है। सम्भवतः उनकी सामाजिक-संगठन की इकाई 'क़बीला' था और हर क़बीले का एक चिह्न (Totem) होता था, जिसे क़बीले के सदस्य अपना आदि-पूर्वज मानते थे। मिश्र में जब नव-पाषाण-कालीन ग्राम, कांस्यकाल के प्रारम्भ में, नगरों में परिणत होते है तो उनके नाम हाथी या बाज जैसे किसी पशु या पक्षी के नाम पर रखे हुये मिलते हैं। यह अनुमान करना असंगत नही है कि नव-पाषाणकाल मे हाथी और बाज उन ग्रामों के क़बीलों के टॉटेम (Totem) रहे होंगे। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इस युग में 'राजा' भी अस्तित्व में आने लगे थे। कुछ स्थानों पर साधारण मकानों के बीच में एक बड़ा मकान मिला है जो वहां के राजा का महल हो सकता है, परन्तु इसे निश्चय-पूर्वक कहना असम्भव है। हो सकता है कि ये बड़े मकान उन गाँवों के 'पंचायत-घर' मात्र हों।

## कला और धर्म

**भूमि की उर्वरता से सम्बन्धित धार्मिक-विश्वास**—मृद्भाण्डों के अतिरिक्त नव-पाषाणकाल की कलाकृतियाँ बहुत थोड़ी हैं। पूर्व-पाषाणकाल के गुहा चित्रों की तुलना मे रखी जा सकने वाली कृतियो का तो सर्वथा अभाव है। परन्तु मिश्र, सीरिया, ईरान, दक्षिण-पूर्वी यूरोप और मेडीट्रेनियन प्रदेश से मिट्टी, पत्थर और अस्थियों की नारी-मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियाँ मातृ-शक्ति-सम्प्रदाय मे सम्बन्धित हो सकती हैं। शायद उनका विश्वास था कि पृथिवी, जिसके वक्ष से अन्न उत्पन्न होता है, नारी के समान है। उसे भेंट देकर तथा पूजकर सन्तुष्ट किया जा सकता है। सम्भवतः उनका यह भी विश्वास था कि उसे तन्त्र-मन्त्र और सादृश्यमूलक जादू (Sympathetic magic) से वश मे किया जा सकता है। इसलिए वे उसका मूर्तियो मे नारी-रूप में चित्रण करते थे। बहुत से प्रदेशों मे उत्पादन-प्रक्रिया मे पुरुष पर अधिक बल दिया जाता था। इसका प्रमाण अनातोलिया, बल्कान प्रदेश और इंगलैण्ड से प्राप्त मिट्टी और पाषाण की शिश्न मूर्तियाँ हैं।

उपर्युक्त मत का समर्थन एक और तथ्य से भी होता है। प्रारम्भिक सभ्यताओं में, नव-पाषाणकाल के फौरन बाद, बहुधा एक **कृषि-नाटक** (Fertility Drama) खेला जाता था, जिसमे एक राजा और रानी का 'विवाह' होता था। उनका 'औपचारिक सहवास' (Ceremonial Union of Sexes) प्रकृति की उर्वरता और अन्न की उत्पत्ति का प्रतीक और प्रेरक माना जाता था। इसमें प्रधान पात्र 'अन्नदेव' (Corn King) होता था। जिस प्रकार अन्नोत्पादन मे पहले बीज 'मरता' है अर्थात उसे भूमि मे गाड़ दिया जाता है, इसी प्रकार इस नाटक मे 'राजा' को 'मरना' होता था। उसके बाद बीज से जिस प्रकार नया अन्न उत्पन्न होता है, उसी प्रकार नये 'राजा' का 'आविर्भाव' होता था। यह सर्वथा सम्भव है इन नाटको का विकास नव-पाषाणकाल मे पश्चिमी एशिया और पूर्वी मेडीट्रेनियन-प्रदेश की जातियों द्वारा बीज बोने के अवसर पर दी जाने वाली **नरबलि की प्रथा** से हुआ हो। फ्रेज़र के अनुसार कृषि-कर्म के आदिकाल मे बीज बोने के समय नरबलि देने की प्रथा लगभग सभी स्थानो पर प्रचलित थी।

**मृतक-संस्कार और बृहत्पाषाण**—अधिकांश नव-पाषाणकालीन समूह अपने मृतकों को **कब्रिस्तानों** या **घरों में** गाड़ते थे और उनके साथ मृद्भाण्ड, हथियार और खाद्य-सामग्री रख देते थे।[१] वे इस संस्कार में पूर्व-पाषाणकालीन मानवों से अधिक सावधानी बरतते थे। सम्भवतः उनका विश्वास था कि अन्नोत्पत्ति का मृतको से कुछ सम्बन्ध होता है। मेडीट्रेनियन प्रदेश मे मृतक के लिये उसके **मकान का भूमिगत लघु प्रतिरूप** बनाया जाता था। उत्तर और पश्चिमी यूरोप मे मृतकों के प्रति आदर प्रकट करने के लिए स्मारक के रूप में **मेगेलिथ या बृहत् पाषाण** (Megaliths या Great stones) खड़े किये जाते थे (चित्र ४१, ४२), विशेषतः स्कैन्डीनेविया, ब्रिटन और दक्षिणी इंगलैण्ड मे। इनके बनाने मे निश्चितरूप से भारी श्रम करना पडता होगा। यूरोप में पाषाण-समाधियों का सबसे प्राचीन रूप **डॉलमेन** (Dolmen या Table Rock) कहलाता है। इसमें कई पाषाण स्तम्भो पर एक समतल शिला उसी प्रकार रख दी जाती थी, जिस प्रकार मेज़ के चारो पायों पर तख्ता रखा होता है; इस प्रकार बने पाषाण-कक्ष मे अस्थि-अवशेष रख दिये जाते थे। बहुधा डॉलमेन को मिट्टी के ढेर से, जिसे **टमलस्** (Tumlus) कहा जाता है, ढक दिया जाता था। *टमलस् और डॉलमेन को सम्मिलित रूप से बरो (Barrow) कहा जाता है।* ब्रिटन (Briton) मे बहुधा एक ही पाषाण-स्तम्भ खड़ा किया जाता था। इसे **मोनोलिथ** (Monolith) या **मेनहिर** (Menhir या Long stone) कहते हैं। ये

१. उत्तरी इटली में बहुत सी गुफाओं मे मृतकों की अस्थियों के समीप खण्डित पाषाणोपकरण मिले हैं। इन उपकरणों को जानबूझकर तोड़ा गया है। सम्भवतः उनका विश्वास था कि इस प्रकार तोडने से उपकरण 'मर' जाते हैं और उनकी आत्मा मृत व्यक्ति के साथ चली जाती है।

छोटे और बडे, सादे और चित्रित सभी प्रकार के मिलते है (चित्र ४०)। ये उमी प्रकार के पाषाण हैं जैसे आजकल समाधियों पर स्मारक-रूप में खडे किये जाते हैं। अन्तर केवल इतना है कि नव-पाषाणकालीन मानव उनमें आत्मा का निवास मानते थे। मेनहिरो को बहुधा पंक्ति-बद्ध रूप में भी खड़ा किया जाता था। उस अवस्था में इन्हें एलायनमेन्ट (Alignment) कहते हैं। जिन मेनहिरों को विशिष्ट धार्मिक उत्सव मनाने के लिए पाषाण-खण्डों के घेरे मे स्थापित किया गया है, उन्हें क्रोमलेच् (Cromlech) कहा जाता है।

चित्र ४१ : नव-पाषाणकाल का एक चित्रित मेनहिर

जादू-टोना—नव-पाषाणकालीन जातियाँ जादू-टोने मे भी विश्वास करती थी। मेरिम्द में पाषाण की लघु कुल्हाड़ी मिली है जिसमें छेद बना हुआ है। यह गले मे तावीज़ के रूप में पहिनी जाती होगी। उनका यह विश्वास रहा होगा कि इस प्रकार लघु अस्त्र-शस्त्रों को तावीज रूप में पहिनने से उनकी अन्त.शक्ति पहिनने वाले को मिल जाती है।

## ज्ञान-विज्ञान

नव-पाषाणकालीन मानव का ज्ञान-विज्ञान पूर्व-पाषाणकालीन मानव से बहुत

समुन्नत था। शताब्दियों के अनुभवों और प्रयोगों द्वारा उन्हें बहुत सी नई बातें मालूम हो गई थी। मिट्टी पकाने का रसायन-शास्त्र, खाना पकाने का जीव-रसायन-शास्त्र तथा बहुत सी वस्तुओं के उत्पादन के कृषि-शास्त्र से अब वे परिचित हो गये थे। उनको शरीर की संरचना का भी थोडा बहुत ज्ञान था, क्योंकि कुछ अस्थियों मे ऐसे चिह्न मिले है जिनसे मालूम होता है कि उन्हें टूटने के बाद जोड़ा गया है। कृषि का जलवायु और ऋतुओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इनका पूर्व ज्ञान प्राप्त करने मे सूर्य, चाँद और सितारों से बहुत सहायता मिलती है। नव-पाषाणकाल के मनुष्य ने इस दिशा मे पग उठाना आरम्भ कर दिया था। उदाहरण के लिए मिश्र के निवासी नव-पाषाणकाल के अन्त तक यह खोज कर चुके थे कि सीरियस नक्षत्र (Sirius) उसी समय निकलता है, जिस समय नील नदी मे बाढ़ आती है। कालान्तर मे यह विश्वास किया जाने लगा कि नील नदी मे बाढ सीरियस नक्षत्र के कारण आती है। इसी से मिलते-जुलते अनुभवों मे यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि सितारे मनुष्य की गतिविधि को नियन्त्रित करते हैं। यह ज्योतिष का मूल सिद्धान्त है। ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ में ऐसे विचार यूरोप और एशिया मे मिलते हैं। सम्भवत. इनका बीज नव-पाषाणकाल मे पड़ा। इनीदर नामक विद्वान् का तो यह विश्वास है कि कुछ स्थानों पर मेगेलिथों का क्रम नक्षत्रों की गतिविधि के अनुसार निश्चित किया गया है। यदि तत्कालीन युग में ज्योतिष और खगोल-विद्या की इतनी प्रगति हो चुकी थी, तो यह अनुमान करना भी असंगत न होगा कि सूर्य, चाँद और सितारों से सम्बन्धित आख्यान, जो ऐतिहासिक युग के उष.काल मे प्रचलित थे, नव-पाषाण काल मे जन्मे होंगे। परन्तु इन सब अनुमानों को प्रमाणित करना ज्ञान की वर्तमान अवस्था में असम्भव है।

## पाषाणकालीन मानव की उपलब्धियाँ

नव-पाषाणकाल के अन्त तक मानव सभ्यता के लगभग सभी आधार-स्तम्भों का निर्माण हो चुका था। अग्नि, आवश्यक हथियार और औजार, मृद्भाण्ड, कृषि, पशुपालन, वस्त्र और मकान इत्यादि सभी वस्तुएँ जो आज भी मनुष्य के लिए अपरिहार्य है, अस्तित्व मे आ चुकी थी। मैग्डेलेनियन काल में मनुष्य कला के क्षेत्र मे भी सफलतापूर्वक पदार्पण कर चुका था। लिपि (Script), धातु (Metal) तथा राज्य (State) को छोड़कर, जिनका जन्म धातुकाल मे हुआ, मनुष्य ने वे सभी आविष्कार कर लिये थे जिनके आधार पर मानव-सम्यता के भव्य भवन का निर्माण किया जा सका। आर्थिक दृष्टि से भी नव-पाषाणकालीन क्रान्ति सफल रही। कृषि और पशुपालन के द्वारा मनुष्य ने प्रकृति को काफी सीमा तक अपने नियन्त्रण मे, कर लिया। वस्तुतः आधुनिक काल मे औद्योगिक-क्रान्ति को छोड़कर, मानव जीवन मे कोई ऐसी उथल-पुथल नही हो पायी है जिसकी तुलना नव-

पाषाणकालीन क्रान्ति से की जा सके। एक प्रकार से इसे मानव सभ्यता की भावी प्रगति की आधार-शिला कहा जा सकता है।

ऊपर दिया गया चित्र इंगलैण्ड के स्टोनहेन्ज नामक स्थान से प्राप्त 'वृहत्पाषाण' का है। यहाँ पाषाण-खण्डों से १०० फुट व्यास का एक घेरा निर्मित किया गया है। यह एक गली द्वारा पास ही स्थित एक नव-पाषाणयुगीन ग्राम से सम्बद्ध है।

# ९

# ताम्र-प्रस्तरकाल

## नव-पाषाणकालीन आर्थिक-व्यवस्था के दोष और ताम्रकालीन आविष्कार

**नव-पाषाणकालीन व्यवस्था के दोष**—नव-पाषाणकालीन आर्थिक-व्यवस्था कम-से-कम तात्कालिक दृष्टि से पूर्णतः सफल रही। मनुष्य, जो पूर्व-पाषाण-काल में उदरपूर्ति के लिए प्रकृति की कृपा पर निर्भर था, अब कृषि और पशु-पालन के द्वारा आवश्यक खाद्य-सामग्री स्वयं उत्पन्न करने लगा। परन्तु दीर्घकालिक दृष्टि से इस व्यवस्था में दो प्रमुख दोष थे। एक, इससे बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या स्थायी रूप से हल नहीं हो पायी। उस काल मे इस समस्या का एक-मात्र हल खेती के लिए नयी भूमि और पशुओं के लिए नये चरागाह ढूंढना था। प्रारम्भ में यह कार्य अत्यन्त सरल था। जब किसी ग्राम की जनसंख्या बढ़ जाती थी तो वहाँ के निवासियों का एक भाग पड़ौस में नया ग्राम बसा लेता था या नये चरागाह ढूढ लेता था। लेकिन भूमि का विस्तार सीमित है। एक समय ऐसा आया जब नये खेत और चरागाह मिलने बन्द हो गये। कुछ जातियों ने इस कठिनाई को दूर करने के लिए अन्य जातियो के खेतो और चरागाहों को बलपूर्वक छीनना प्रारम्भ किया। परन्तु यह स्पष्ट है कि पारस्परिक छीना-झपटी

---

चित्र: ऊपर दिये हुये चित्र में, जो मिश्र के पिरेमिड युग के एक सामन्त की समाधि से लिया गया है, कृषकों को हल चलाते हुये दिखाया गया है। द्रष्टव्य है कि जुआ (Yoke) बैलो के कन्धो के बजाय सीगों पर रखा हुआ है। इस प्रकार के हल का आविष्कार उस युग मे प्रचलित कुदालियो से हुआ होगा (चि०. ४५, पृ० ९२)।

से बढ़ती हुई जनसंख्या और सीमित भूमि की समस्या हल नहीं हो सकती थी। दूसरी समस्या परिवारों और ग्रामों की आत्म-निर्भरता के कारण उत्पन्न हुई। ग्रामों में पारस्परिक सम्बन्ध के अभाव तथा कृषि-सम्बन्धी ज्ञान और उपकरणों की आदिम अवस्था के कारण नव-पापाणकालीन मानव अधिक से अधिक उतनी खाद्य-सामग्री उत्पन्न करते थे और कर सकते थे जितनी उनके परिवार के लिये पर्याप्त होती थी। वे किसी समय भी बाह्य सहायता की अपेक्षा नहीं कर सकते थे। इसका परिणाम यह होता था कि किसी वर्ष भूकम्प, अनावृष्टि, अतिवृष्टि या तूफान जैसे प्राकृतिक संकट आने पर वे नितान्त असहाय हो जाते थे। अगर ये प्रकोप दो तीन वर्ष चल जाते थे तो उनका अन्त ही हो जाता था।

**नये आविष्कार**—इन दोनों समस्याओं को सुलझाने के लिये उतनी ही भूमि में अधिक खाद्य-सामग्री उत्पन्न करना और नव-पापाणकाल के बिखरे हुए ग्रामों में पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करना आवश्यक था, जिससे संकट पड़ने पर एक ग्राम दूसरे की सहायता ले सकें। नव-पापाणकाल के पश्चात् मनुष्य ने अनेकानेक आविष्कारों द्वारा इस कार्य में सफलता पाने का प्रयास किया। सम्भवतः विश्व-इतिहास में ५००० ई० पू० से ३००० ई० पू० तक जितने महत्वपूर्ण आविष्कार हुए उतने आधुनिक वैज्ञानिक युग को छोड़कर कभी नहीं हुए। गॉर्डन चाइल्ड के अनुसार इनमें निम्नलिखित १६ आविष्कार विशेषरूप से महत्त्वपूर्ण है: ताम्र का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिए प्रयोग; पशुओं का भार वाहक के रूप में प्रयोग; पालदार नाव, पहियेदार गाड़ी और हल का आविष्कार; नहरों द्वारा कृत्रिम सिंचाई-व्यवस्था; फलों की खेती; शराब बनाने का आविष्कार; कांस्य का उत्पादन और प्रयोग; ईंट और मेहराब बनाने तथा काचन-क्रिया (Glazing) की विधि की खोज; सौर-पंचाङ्ग, मुद्रा, लिपि तथा अंकों (Numeral notation) का आविष्कार। पुरातात्त्विक दृष्टि से इनमें ताम्र का प्रयोग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिये पुरातत्त्ववेत्ता इस काल को **ताम्रकाल** कहते है।

**ताम्र, कांस्य और नगर-क्रान्ति**—ताम्रकाल में हल के प्रयोग के कारण उत्पादन बढ़ जाता है तथा बढ़ती हुई आबादी की समस्या कुछ समय के लिये सुलझ जाती है। इसलिये नव-पापाणकालीन ग्राम शनैः शनैः बड़े हो जाते है; परन्तु बड़े होने के साथ-ही-साथ उनकी आत्म-निर्भरता समाप्त होने लगती है और सामाजिक संगठन मे कुछ जटिलता आने लगती है। पहियेदार गाडियों और पशुओ का भार-वाहक के रूप में प्रयोग होने के कारण उनका पृथकत्व टूटने लगता है। परन्तु इतना होने पर भी ताम्र के साथ-साथ पापाणोपकरणों का प्रयोग चलता रहता है और ग्रामों का आकार बढ़ जाने पर भी वे नगरों के रूप में परिणत नहीं होते। इस

युग में ताम्र और पाषाणोपकरणों का प्रयोग साथ-साथ होता रहा इसलिये कभी-कभी इसे ताम्र-पाषाण युग (Chalcholithic Age) भी कहा जाता है। ताम्र-काल के अन्त में, अर्थात चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० मे, मनुष्य खाद्य-सामग्री की समस्या को हल करने के लिए एक और प्रयोग करता है और वह है नदियों की घाटियों की उर्वर भूमि को कृषि के योग्य बनाना। वह इन घाटियों मे स्थित दलदलों को सुखाता है और कृत्रिम सिंचाई की व्यवस्था के लिये नहरें तथा बाँध बनाता है। इन कार्यों को छोटे-छोटे ग्रामों के निवासी नही कर सकते थे इसलिये मनुष्य को स्वय को, विशाल समूहों—नगरों—मे सगठित करना आवश्यक हो जाता है। लगभग इसी समय वह कांस्य के उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग की विधि का आविष्कार कर लेता है। दूसरे शब्दो मे कांस्यकाल और नगर-सभ्यताओं का उदय साथ-साथ होता है। सुविधा की दृष्टि से हम इस अध्याय मे केवल ताम्रकालीन आविष्कारों तथा मानव जीवन पर उनके प्रभावों का अध्ययन करेंगे। कांस्यकाल और नगर-क्रान्ति का अध्ययन अगले अध्याय मे किया जाएगा।

## ताम्रकालीन उपनिवेश

**ताम्रकालीन संस्कृति का उदय-स्थल**—ताम्रकाल का प्रादुर्भाव उस विशाल भूभाग में हुआ जो मिश्र और पूर्वी मेडीट्रेनियन प्रदेश से भारत में सिन्धु नदी की घाटी तक विस्तृत है (मानचित्र ३)। इसमें नील नदी की घाटी, एजियन प्रदेश, एशिया माइनर, सीरिया, पेलेस्टाइन, असीरिया, बेबिलोनिया, ईरान, अफ-गानिस्तान तथा उत्तर-पश्चिमी भारत आते हैं। यह प्रदेश अपेक्षाकृत शुष्क है, तथापि ऐतिहासिक युग के पूर्व यहाँ अब से अधिक वर्षा होती थी। इसका बहुत सा भाग पर्वतों और रेगिस्तानो द्वारा घिरा हुआ है, परन्तु बीच-बीच मे नदियों की घाटियाँ और हरे-भरे नखलिस्तान है। यही पर नव-पाषाणकालीन ग्राम-सभ्यता का उदय हुआ था। ताम्रकालीन पुरातात्त्विक अवशेष भी सर्वप्रथम इन्ही नखलिस्तानों और घाटियों मे अवस्थित नव-पाषाणकालीन ग्रामों के ऊपरी स्तरों से प्राप्त होते है।

**मिश्र के उपनिवेश**—सिन्धु प्रदेश के प्रागैतिहासिक युग पर प्रकाश डालने वाले बहुत कम अवशेष प्राप्त हैं, परन्तु ईरान, बेबिलोनिया, असीरिया, सीरिया, पेलेस्टाइन, मिश्र और क्रीट से प्राप्त साक्ष्यो की सहायता से ताम्रकालीन सभ्यता के विकास की प्रमुख अवस्थाओं का अध्ययन किया जा सकता है। मिश्र मे ताम्रकाल के प्राचीनतम स्तरो को बदरियन (Badarian) और अम्रतियन (Amratian) कहा जाता है। इनके निर्माताओ का रहन-सहन नव-पाषाण-कालीन था। वे ताम्र से परिचित थे परन्तु इसको ढालकर उपकरण बनाने की विधि का आविष्कार नही कर पाये थे। वे सम्भवतः इस लोक से अधिक परलोक

| | सिन्धु प्रदेश |
|---|---|
| | झूकर |
| ोतृतीय | |
| | हड़प्पा |
| ोद्वितीय | अमरी |
| ोप्रथम | |

चिन्ता करते थे। उनकी समाधियों में बहुमूल्य उपकरण और आभूषण मिलते इनको बनाने के लिये वे विदेशों से बहुमूल्य पाषाणों का आयात करते थे। कालान्तर में इसी प्रवृति के कारण मिश्र में पिरेमिडों का निर्माण हुआ। आगामी संस्कृति में, जिसे पुरातत्त्ववेत्ता गरजियन (Gerzean) कहते है, ताम्र को ढालकर उपकरण बनाने की विधि का आविष्कार हो जाता है। इस युग में मिश्र के निवासी मेसोपोटामिया के घनिष्ठ सम्पर्क मे आये। इस युग की समाधियाँ विशालतर और सुन्दर है तथा उनमें मिलने वाले अवशेष भी अधिक मूल्यवान और कलात्मक हैं।

चित्र ४४

**पश्चिमी एशिया और ईरान के उपनिवेश**—हम देख चुके है कि ईरान में सियालक की प्रथम स्तर तथा मेसोपोटामिया में अन्य स्थानों से प्राप्त तत्कालीन अवशेष नव-पाषाणकाल के है। सियालक का द्वितीय स्तर तथा सीरिया तथा असीरिया के द्वितीय स्तर के अवशेषों की संस्कृति भी मूलतः नव-पाषाणकाल की है, [illegible] कुछ परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देते है। कौड़ियों, सीपियों और मूल्यवान प्रस्तरों का आयात-निर्यात बढ़ जाता है। मकान बनाने में मिट्टी की कच्ची टों और मृद्भाण्डों के लिए भट्टी का प्रयोग होने लगता है। ताम्र का उपयोग ी प्रारम्भ हो जाता है, परन्तु इसको पिघलाकर और साँचों में ढालकर उपकरण नाने की विधि अभी तक अज्ञात है। केवल धातु को कूटपीटकर इच्छित रूप ने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस काल में स्त्रियो पुरुषों में ाबीज पहिनने की प्रथा बढ़ जाती है। देवताओं के लिए मदिर बनवाये जाने गते है। सुमेर में इरिडू नगर में इया का प्राचीनतम मन्दिर सम्भवतः इसी युग का है। रातत्त्ववेत्ता इस युग को तैल हलफ (Tell Halaf) के नाम पर हलफियन (Halafian) कहते है। यह स्थूल रूप से मिश्र की बदरियन संस्कृति का समकालीन

की चिन्ता करते थे। उनकी समाधियों में बहुमूल्य उपकरण और आभूषण मिलते हैं। इनको बनाने के लिये वे विदेशों से बहुमूल्य पाषाणों का आयात करते थे।

चित्र ४४

कालान्तर में इसी प्रवृति के कारण मिश्र में पिरेमिडों का निर्माण हुआ। आगामी संस्कृति में, जिसे पुरातत्ववेत्ता गरजियन (Gerzean) कहते हैं, ताम्र को ढालकर उपकरण बनाने की विधि का आविष्कार हो जाता है। इस युग में मिश्र के निवासी मेसोपोटामिया के घनिष्ठ सम्पर्क में आये। इस युग की समाधियाँ विशालतर और सुन्दर है तथा उनमें मिलने वाले अवशेष भी अधिक मूल्यवान और कलात्मक है।

**पश्चिमी एशिया और ईरान के उपनिवेश**—हम देख चुके हैं कि ईरान में सियालक की प्रथम स्तर तथा मेसोपोटामिया में अन्य स्थानों से प्राप्त तत्कालीन अवशेष नव-पाषाणकाल के हैं। सियाल[illegible] का द्वितीय स्तर तथा सीरिया तथा असीरिया के द्वितीय स्त[illegible] के अवशेषों की संस्कृति भी मूलतः नव-पाषाणकाल की है, [illegible] कुछ परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। कौड़ियों, सी[illegible]र मूल्यवान प्रस्तरों का आयात-निर्यात बढ़ जाता है। मकान बनाने में मिट्टी की कच्ची ईंटों और मृद्भाण्डों के लिए भट्टी का प्रयोग होने लगता है। ताम्र का उपयोग भी प्रारम्भ हो जाता है, परन्तु इसको पिघलाकर और साँचों में ढालकर उपकरण बनाने की विधि अभी तक अज्ञात है। केवल धातु को कूटपीटकर इच्छित रूप देने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस काल में स्त्रियों पुरुषों में ताबीज पहिनने की प्रथा बढ़ जाती है। देवताओं के लिए मंदिर बनवाये जाने लगते हैं। सुमेर में इरिडू नगर में इया का प्राचीनतम मन्दिर सम्भवतः इसी युग का है। पुरातत्ववेत्ता इस युग को तैल हलफ (Tell Halaf) के नाम पर हल्फियन (Halafian) कहते है। यह स्थूल रूप से मिश्र की बदरियन संस्कृति का समकालीन माना जा सकता है। अगले युग में, जिसमें सियालक का तृतीय स्तर और मेसोपोटामिया तथा सीरिया की अल उबेद (al'Ubaid) संस्कृति आती है, यद्यपि पाषाण उपकरणों का प्रयोग चलता रहता है, तथापि ताम्र को पिघलाने और ढालकर उपकरण बनाने की कला का आविष्कार हो जाता है। कुम्हार चाक का प्रयोग करने लगते हैं और व्यापारी सम्पत्ति पर अधिकार प्रदर्शित करने के लिए मुद्राओं का। सुमेर मे मृद्भाण्ड हाथ मे बनाने की प्रथा चलती रहती है, परन्तु देवताओं के पुराने मन्दिरों के स्थान पर बड़े मन्दिर बनाये जाने लगते हैं। अल उबेद संस्कृति मिश्र की अम्रतियन संस्कृति की समकालीन प्रतीत होती है। सम्भवतः इस समय इससे मिलती-जुलती सांस्कृतिक अवस्था एजियन प्रदेश, एशिया माइनर,

तथा उत्तर-पश्चिमी भारत मे भी चल रही थी। अगले युग मे सियालक का चतुर्थ स्तर असीरिया की तेपगावरा (Tepe Gawra) और सुमेर की जम्देतनस्र (Jamdet Nasr) संस्कृतियाँ आती हैं। ये मिश्र की गरजियन संस्कृति की समकालीन मालूम होती हैं। इस युग में ताम्रकालीन ग्राम जिनका आकार नव-पाषाणकालीन ग्रामों से पहले ही काफी बड़ा हो चुका था, धीरे-धीरे छोटे-छोटे क़स्बों और नगरो मे परिणत होने लगते है। असीरिया के इस काल के क़स्बे बहुत छोटे थे, परन्तु इनके निवासी आग मे पकी ईंटो और कॉस्य का थोड़ा बहुत प्रयोग करने लगे थे। सियालक चतुर्थ और सुमेर मे इस युग मे बड़े-बडे नगर, जिनके निवासी लिपि और कॉस्य से परिचित थे तथा जिनकी राजनीतिक अवस्था काफी विकसित हो चुकी थी, अस्तित्व मे आ जाते हैं। इन नगरो का उदय किस प्रकार हुआ, इसका अध्ययन हम अगले अध्याय मे करेंगे। इसके पूर्व ताम्रकाल के उन आविष्कारो का अध्ययन करना आवश्यक है, जिनके कारण नगर सभ्यता के प्रमुख तत्त्व अस्तित्व मे आ सके।

## ताम्र का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग

ताम्र का हथियार और औजार बनाने के लिये प्रयुक्त होना मानव जीवन मे क्रान्तिकारी आविष्कार था। ताम्र का प्रयोग इतना सरल नही था जितना पाषाण का। किसी प्रस्तर-खण्ड से हथियार बनाने के लिये उसे केवल एक विशेष विधि से तोडना और घिसना होता था परन्तु ताम्र का उपयोग करने के लिये अत्यधिक विज्ञान-कौशल (Technical skill) की आवश्यकता थी। इस पर भी ताम्र एक द्रव्य के रूप में पाषाण की तुलना में बहुत उत्तम था, इसलिये उसका प्रयोग शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया।

**ताम्र के गुण**—(१) ताम्र एक लचीली धातु है। इसे न केवल पाषाण की तरह घिसा जा सकता है वरन् आसानी से मोडा भी जा सकता है। इसे हथौड़े से पीटकर इच्छित रूप दिया जा सकता है और चादरे बनाई जा सकती हैं, जिनको काटकर विविधाकार के उपकरण बनाये जा सकते हैं। ताम्र के इस गुण का आविष्कार मिश्र में अम्रतियन और सियालक द्वितीय मे हो चुका था।

(२) ताम्र के उपकरणों में पत्थर के उपकरणों के समान कठोरता और तीक्ष्णता तो होती ही है, साथ ही स्थायित्व भी होता है। पकी मिट्टी और पाषाण-हथियारों को एक बार टूटने पर जोडा नही जा सकता परन्तु ताम्र के उपकरण न तो इस प्रकार टूटते हैं, और यदि खराब हो भी जाते हैं तो उन्हें गलाकर नये उपकरण बनाये जा सकते है। थोड़ी बहुत खराबी को पीटकर या रेतकर ठीक किया जा सकता है। ताम्र में पत्थर की कठोरता के साथ-साथ गीली मिट्टी का लचीलापन भी मिलता है। जिस प्रकार गीली मिट्टी के टुकड़ो

को जोड़ा जा सकता है, उसी प्रकार ताम्र के टुकड़ों को भी। परन्तु ताम्र में इनके अतिरिक्त और बहुत से गुण हैं जो मिट्टी और पत्थर में नही पाये जाते। उदाहरणार्थ ताम्र को पिघलाया जा सकता है। उस समय यह मिट्टी की तरह लसलसा ही नहीं वरन् पानी की तरह तरल हो जाता है। अगर तरलावस्था में इसे किसी साँचे में डाल दिया जाय और फिर ठन्डा कर लिया जाय, तो यह उस साँचे का रूप धारण कर लेता है परन्तु इसकी कठोरता लौट आती है। ढालकर उपकरण बनाना सम्भव होने से ताम्र से कम-से-कम उतने प्रकार के उपकरण बन सकते हैं जितने प्रकार के साँचे उपलब्ध हों। ढले हुये उपकरणों को पीटकर तथा रेतकर सुधारा जा सकता है। सियालक तृतीय तथा गरजियन संस्कृतियों मे ताम्र के इन गुणों से लाभ उठाने की विधि की खोज हो चुकी थी।

(३) जिन स्थानों पर ताम्र विशुद्धावस्था मे नही मिलता, वहाँ इसे वैज्ञानिक विधियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे बहुत से पाषाण होते हैं जिनको चारकोल के साथ गर्म करने पर ताम्र निकल आता है। सियालक तृतीय और अलउबेद युग में इस विधि का भी आविष्कार हो गया था।

(४) दजला और फरात की घाटियों तथा अन्य ऐसे प्रदेशों में जहाँ पत्थर बाहर से मँगाया जाने के कारण मँहगा पड़ता था, ताम्र के हथियार पत्थर के हथियारों से सस्ते पड़ते थे, क्योंकि ताम्र का एक हथियार पत्थर के कई हथियारों के बराबर चलता था। युद्ध में ताम्र का हथियार ज्यादा उपयोगी सिद्ध होता था। पत्थर का हथियार किसी समय भी टूट सकता था जबकि ताम्र के हथियार के साथ इस प्रकार का भय नही था। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हम देख चुके हैं, ताम्र को टिन या सीसा मिलाकर और कठोर किया जा सकता था।

## कृषि-कर्म सम्बन्धी आविष्कार

पशुओं से खाल, मांस और दूध इत्यादि की प्राप्ति मनुष्य नव-पाषाणकाल में ही करने लगा था। अब उसने यह विचार किया कि पशुओं से ऐसे बहुत से कार्य लिए जा सकते हैं जिनको करने में उसे स्वयं अत्यधिक श्रम करना पड़ता है। खेत जोतने का काम इनमें सबसे कठिन था। इस काम को अब तक स्त्रियाँ करती थी। अब मनुष्य ने जुए (Yoke) का आविष्कार किया (चित्र ४३, पृ० ८६) जिसमें बैलों को जोतकर हल खिचवाया जा सकता था। स्वयं हल का आविष्कार कब हुआ यह कहना कठिन है। प्रारम्भिक हल लकड़ी के बनते थे इसलिये उनके अवशेष प्राप्त नही होते। इतना निश्चित है कि ३००० ई० पू० के आसपास इसका प्रयोग मिश्र, मेसोपोटामिया और सम्भवतः भारत में हो रहा था (चित्र ४३)। इसका आविष्कार इस तिथि के कई शताब्दी पहले हो गया होगा। मिश्र में हल का

को रथ में जोड़ते थे, ऐसा कुछ चित्रों से मालूम होता है। फ्रैंकफर्ट ने इस पशु को घोड़ा, वूली ने गधा तथा अन्य कुछ विद्वानों ने खच्चर बताया है। ऐसा ही सन्देह ऊँट के प्रयोग के विषय मे भी है।

**बैलगाड़ियाँ**—यातायात मे सबसे क्रान्तिकारी आविष्कार पहिये का था। हलफियन युग मे पहिये के प्रयोग के निश्चित प्रमाण मिलते है। ३००० ई० पू०
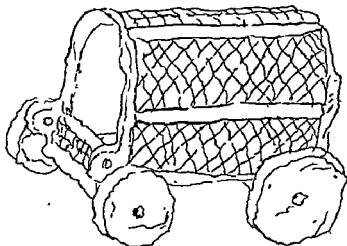
चित्र ४८ : तेपगावरा से प्राप्त खिलौना-गाड़ी की अनुकृति

के लगभग दो और चार पहियें वाली गाड़ियाँ तेपगावरा में प्रयुक्त हो रही थी (चित्र ४८)। २००० ई० पू० तक इस प्रकार की गाड़ियाँ सिन्धु से लेकर
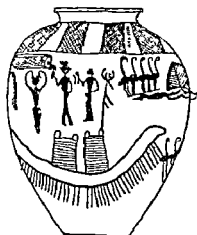
चित्र ४६ : गरजियन युग का एक मृदभाण्ड

क्रीट तक और १००० ई० पू० में चीन से लेकर स्वीडन तक प्रचलित हो गई थी, परन्तु मिश्र मे १६०० ई० पू० के पहले इनका प्रचलन नहीं हो पाया था।

जल-यातायात—३००० ई० पू० तक वायु की सहायता जल-यातायात मे ली जाने लगी थी। नव-पाषाणकाल में मनुष्य ने बेड़े और छोटी-छोटी नावें बनाना सीख लिया था। ताम्रकाल मे उसने पाल का प्रयोग करना सीखा। गरजियन और अलउबेद के मृद्भाण्डों पर पालदार नावों की अनुकृतियाँ इसका निश्चित प्रमाण हैं (चित्र ४६)। तीसरी सहस्राब्दी में पालदार नावों का मिश्र, और पूर्वी मेडीट्रेनियन प्रदेश में प्रचुरता से प्रयोग हो रहा था। यह प्रथम अवसर था जब मनुष्य ने किसी भौतिक-शक्ति को चालक-शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया। कालान्तर में यातायात की यह विधि अन्य सब विधियों से सस्ती सिद्ध हुई।

## मृद्भाण्ड कला

यातायात में हुई क्रान्ति का प्रभाव एक और उद्यम पर भी पड़ा। यह उद्यम है मृद्भाण्ड बनाने की कला। नव-पाषाणकाल के अन्त तक मनुष्य मृद्भाण्ड हाथ से बनाता था। जब उसने पहिये के आविष्कार का प्रयोग बैलगाड़ी के निर्माण

चित्र ५० : प्राचीन मिश्र में चाक पर बर्तन बनाते हुए कुम्हार

में किया तब उसे यह भी विचार आया कि पहिये की सहायता से वह कम समय में अधिक संख्या मे सुन्दरतर मृद्भाण्ड बना सकता है। इस प्रकार कुम्हार का चाक (Potters' wheel) अस्तित्व मे आया (चित्र ५०)। इसके कारण मृद्भाण्ड कला एक विशिष्ट उद्यम बन जाता है।

## नये आविष्कारों के परिणाम

**विशिष्ट वर्गों का उदय और आत्म-निर्भरता का अन्त**—उपर्युक्त आविष्कारों का सामाजिक और आर्थिक-व्यवस्था पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बहुत प्रभाव

पड़ा। इनके कारण बहुत से वर्ग, जिनके कार्य इतने जटिल थे कि साधारण गृहस्थ उन्हें नही कर सकते थे, अस्तित्व मे आये। ये वर्ग धीरे-धीरे खाद्यान्न के उत्पादन से दूर हटते गये और अपनी उदरपूर्ति के लिए अपनी विशिष्ट विद्याओं पर निर्भर रहने लगे। दूसरी ओर साधारण कृषक को उनकी विद्या से लाभ उठाने के लिए अतिरिक्त उत्पादन करना पड़ा। इससे व्यक्ति और ग्राम की आत्मनिर्भरता को धक्का पहुँचा। उदाहरण के लिए ताम्र के आविष्कार को ही लीजिये। ताम्र के उपकरण बनाने के लिये बहुत-सी वस्तुओं, जैसे ऊँचा तापक्रम उत्पन्न करने के लिये भट्टी, बहुत से पात्र, सँडसी और साँचे इत्यादि की आवश्यकता पड़ती थी। इनका ज्ञान और ताम्र के बनाने, पिघलाने, और ढालने की विधि तत्कालीन साधारण मनुष्यों के लिए बहुत जटिल थी। पत्थर से ताँबे का निकल आना, ताँबे का पिघलना और फिर विविधाकार उपकरणों के रूप में साँचों मे ढल जाना, ये सब बातें उनके लिए जादू के समान थी। ये कार्य सभी व्यक्ति नहीं कर सकते थे, इसलिए जादूगर-पुजारियों के बाद ताम्र उपकरण बनाने वाले ठठेरे (Copper smiths) समाज का दूसरा विशिष्ट वर्ग—धातु-शास्त्र के विशेषज्ञ—बने। उनकी विद्या इतनी जटिल थी कि वे न तो इसे सबको सिखा सकते थे और न सब व्यक्ति इसे सीख ही सकते थे। वे केवल अपने योग्य और प्रिय शिष्यों तथा पुत्रों को अपनी विद्या प्रदान करते थे। उन्हें उदरपूर्ति के लिये स्वयं खाद्य-सामग्री उत्पन्न करने के स्थान पर अपनी विद्या पर निर्भर रहना पड़ता था। दूसरी ओर अन्य व्यक्तियों को उनकी विद्या से लाभ उठाने के लिये—ताम्र उपकरण प्राप्त करने के लिये—अतिरिक्त खाद्य-सामग्री और वस्त्रादि उत्पन्न करने पड़ते थे।

ठठेरों की तरह खान खोदने वाले और पत्थर पिघलाकर ताम्र निकालने वाले व्यक्तियों का कार्य भी कम आसान नहीं था। कच्चा ताँबा चट्टानों की नसों में मिलता है। खान खोदने वालों के लिए यह आवश्यक था कि वे ऐसी चट्टानों की पहिचान, तोड़ने की विधि और खान खोदने की जटिल विधि से परिचित हों। कच्चे माल को पिघला कर धातु बनाने की रासायनिक-प्रक्रिया भी कठिन थी। इसमें ऊँचे तापमान वाली भट्टी की आवश्यकता पड़ती थी। इसका विशद ज्ञान भी बहुत थोडे व्यक्ति प्राप्त कर सकते थे, और जो इस विधि का ज्ञान प्राप्त करते थे वे खाद्योत्पादन में समय नही लगा सकते थे। ताम्र सब स्थानों पर नही मिलता। यह अधिकतर उन पहाड़ी प्रदेशों मे मिलता है जहाँ मनुष्यों का आवास नही होता। टिन तो और भी कम स्थानों पर मिलता है। इसलिये ताम्र और काँस्य के प्रयोग का अर्थ था उसे बाहर से मँगाते रहना और इसका अर्थ था व्यापार, और वह भी आवश्यक वस्तु का, विलासिता की वस्तु का नही। ज्यों ही किसी समाज ने ताम्र के उपकरणों की आवश्यकता अनुभव की, वह दूसरे समूहों पर निर्भर हो गया।

ठठेरों के बाद दूसरा विशिष्ट वर्ग कुम्हारों का था। नव-पाषाणकाल तक प्रत्येक परिवार की स्त्रियां आवश्यकता के बर्तन स्वयं बनातीं थीं। अब चाक का आविष्कार हो जाने के कारण एक दिन मे कई गुने परन्तु सुन्दरतर मृद्भाण्ड बनाना सम्भव हो गया। परन्तु चाक का प्रयोग करना सभी व्यक्ति नहीं सीख सकते थे। इसलिये अब यह एक वर्ग का ही कार्य हो गया। चाक का सर्वप्रथम प्रयोग सियालक तृतीय में मिलता है। सिन्धु-सभ्यता के निर्माता भी इससे परिचित थे। मिश्र में इसका प्रयोग पहियेदार गाड़ियों के प्रयोग से एक सहस्र वर्ष पूर्व, अर्थात २५०० ई० पू० के लगभग, प्रारम्भ हो गया था (चित्र ५०)। एक और नया विशिष्ट वर्ग बढ़इयों का हो सकता है। गाड़ियो और नावों की मांग बढ़ जाने के कारण बढई का पेशा महत्वपूर्ण हो गया होगा। परन्तु आजकल भी कृषक बिना बढई बुलाये स्वयं नाव और गाड़ियाँ इत्यादि बना लेते हैं, इसलिये बढ़ई-वर्ग का अस्तित्व सन्देहास्पद हो सकता है।

**स्थायी जीवन को प्रोत्साहन**—सामाजिक और आर्थिक जीवन में हुये कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तनों का कारण फलों की खेती का आविष्कार था। फलों और खाद्यान्न की खेती में अन्तर है। खाद्यान्न को प्रतिवर्ष बोना और काटना होता है। इसलिये एक वर्ष एक स्थान पर खेती करने के बाद मनुष्य दूसरे वर्ष दूसरे स्थान पर जा सकता है, परन्तु खजूर, जैतून और अंगूर के वृक्षों और लताओं में फल ५-६ वर्ष बाद लगते हैं, परन्तु एक बार लगने के बाद लगातार ७०-८० वर्ष तक मिलते रहते हैं। इसलिये फलों की खेती ने मनुष्य को स्थायी जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य कर दिया। दूसरे, अंगूर की खेती से शराब बनाने की कला अस्तित्व में आई। हो सकता है इससे पहले भी मनुष्य जौ इत्यादि से शराब बनाता रहा हो। इतना निश्चित है कि ३००० ई० पू० तक शराब सुमेरियन जीवन में महत्वपूर्ण स्थान पा चुकी थी।

**व्यक्तिगत सम्पत्ति और मुद्राएँ**—नये-नये आविष्कारों के कारण मनुष्यो के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति बढने लगी। इस पर अपना अधिकार प्रकट करने के लिए वे मुद्राओं की छाप लगाने लगे। मुद्राओं का प्रादुर्भाव निश्चित रूप से तावीजों से हुआ। तावीजो (Amulets) पर बहुधा क़बीले का चिह्न (Totem) या कोई धार्मिक डिजायन खोद दिया जाता था। यह विश्वास किया जाता था कि तावीज़ के पहिनने वाले के पास तावीज के चिह्न या डिजायन का 'मन' (Mana) अथवा गुप्त-शक्ति आ जाती है। धीरे-धीरे यह विश्वास किया जाने लगा कि अगर किसी वस्तु पर तावीज की छाप लगा दी जाय तो वह शक्ति उस वस्तु में भी आ जाती है; अर्थात उस वस्तु पर उस तावीज़ के पहिनने वाले का अधिकार स्थापित हो जाता है और उसके अधिकार का उल्लंघन होने पर तावीज़ की शक्ति अपराधी को दण्डित करती है। इस प्रकार तावीज़ों से मुद्राएँ अस्तित्व

मे आई जिनकी छाप लगाकर वस्तुओ पर अधिकार प्रकट किया जा सकता था।

**सामाजिक संगठन में परिवर्तन**—स्वामी-भाव का प्रदर्शन केवल भौतिक वस्तुओ पर ही नही वरन् मनुष्यों पर भी प्रकट किया जा सकता था। ताम्रकाल मे विभिन्न-समूहों के पारस्परिक सघर्ष बढ गये थे, इसलिये यदा-कदा युद्ध होते रहते थे। इन युद्धो मे पराजित शत्रु को दण्ड देने के लिये **दास-प्रथा** (Slavery) का प्रचलन हुआ। दूसरे शब्दो मे मनुष्य ने मनुष्य को पालतू बनाना सीखा। सामाजिक व्यवस्था मे दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन स्त्रियो की दशा मे सम्बन्धित है। नव-पाषाणकाल मे हुये अधिकाश आविष्कारो का श्रेय स्त्रियो को था। इसलिये उस युग मे उनकी स्थिति पुरुषो से उत्तम और परिवार व्यवस्था मातृसत्तात्मक थी। ताम्रकाल मे अधिकाश आविष्कार स्वय पुरुषो ने किये थे, इसलिए इस काल में स्त्रियों की तुलना मे उनकी अवस्था अधिक अच्छी हो जाती है। इन आविष्कारो से स्त्रियों को बोझा ढोने, खेत जोतने और बर्तन बनाने जैसे कार्यों से मुक्ति मिल गई, परन्तु उनका सामाजिक स्तर गिर गया। अब सामाजिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक हो गई अर्थात परिवार का स्वामी पुरुष हो गया। परिवार की सम्पत्ति पर, जिसमे आभूषण, अस्त्र-शस्त्र, औज़ार, भूमि और दासादि होते थे, उसका अधिकार हो गया और परिवार के सब स्त्री-पुरुष उसकी आज्ञा मानने के लिए बाध्य हो गये। साधारणतः एक समूह मे जिस व्यक्ति के पास सबसे अधिक सम्पत्ति और दास होते थे वह युद्धों मे नायक का भी काम करता था। अगर वह सफल नायक सिद्ध होता था तो उसकी शक्ति बढ जाती थी। वह एक प्रकार से समूह या कबीले का मुखिया बन जाता था। उसकी सम्पत्ति का स्वामी उसके बाद उसका पुत्र होता था, इसलिये व्यवहार मे मुखिया या नायक पद भी पैतृक होता जाता था। यही मुखिया 'कृषि-नाटक' (पृ० ८२) मे अन्नदेव का अभिनय करते-करते वास्तविक राजा बन बैठे।

ऊपर दिया गया चित्र खफजा से प्राप्त तीसरी सहस्राब्दी ई० पू० के प्रारम्भ की एक रिलीफ में बनी मूर्ति की अनुकृति है। इसमे दो व्यक्तियों को एक डण्डे मे एक बड़ा घड़ा लटकाकर ले जाते हुये दिखाया गया है।

१०

# काँस्यकाल, नगर-क्रान्ति और सभ्यता का जन्म

## कांस्य का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग

ताम्रकाल के अन्त में, ३००० ई० पू० के लगभग, मनुष्य ने कांस्य का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिए प्रयोग करने की विधि का आविष्कार किया। ताम्र और कांस्य में अधिक अन्तर नहीं है। ताम्र पाषाण से लचीला होता है, इसलिये उसके उपकरणों की धार शीघ्र नष्ट हो जाती है। यदि इसमें थोड़ा-सा टिन मिला दिया जाय तो अधिक कठोरता आ जाती है। इस मिश्रित धातु को ही कांस्य (Bronze) कहते हैं। इसका आविष्कार सम्भवत. आकस्मिक रूप से हुआ होगा। कभी ताम्र को पिघलाते समय उसमे टिन मिल गया होगा; स्वाभाविक है इस मिश्रित धातु से बने उपकरण अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए होगे। इसी से

---

ऊपर दिये गये चित्र मे, जो थीविज नगर (मिश्र) से प्राप्त हुआ है, ईंटों के बनाने की विधि का अङ्कन है। चित्र में बाईं ओर एक श्रमिक फावड़े (Hoe) से गीली मिट्टी में भूसा मिला रहा है। दूसरा श्रमिक अपने साथी के कन्धे पर मिट्टी की बाल्टी रख रहा है। ऊपर बाईं ओर एक कारीगर गीली मिट्टी को साँचे मे ढालकर ईंटें बना रहा है। श्रमिक गीली मिट्टी उसके सामने डाल रहा है। एक निरीक्षक छड़ी हाथ मे लिए उनका काम देख रहा है। नीचे एक व्यक्ति बैठकर ईंटो के ढेर को माप रहा है और दूसरा वहँगी (Yoke) मे ईंटे भरकर गन्तव्य स्थान को ले जा रहा है।

मनुष्य ने काँस्य की महिमा जानी होगी। यह आविष्कार सर्वप्रथम कब और कहाँ हुआ, कहना कठिन है। इतना निश्चित है कि इसका प्रयोग सिन्धु प्रदेश, मिश्र, क्रीट और सुमेर में ३००० ई० पू० के कुछ पहले या कुछ बाद में, ट्राय में २०००
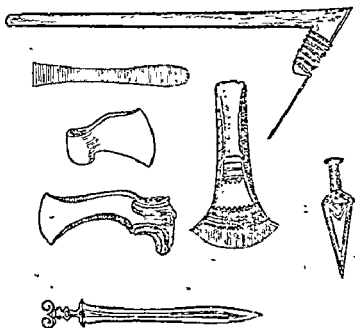
चित्र ५३ : कांस्यकालीन-उपकरण

ई० पू० के बाद तथा शेष यूरोप में इसके भी बाद प्रारम्भ हुआ। स्मरणीय है कि दक्षिणी भारत, जापान, उत्तरी अमरीका और आस्ट्रेलिया में बहुत से भाग ऐसे हैं जहाँ ताम्र और कांस्यकाल कभी नहीं आये। वहाँ मनुष्य ने पाषाणकाल से सीधे लौहकाल में प्रवेश किया।

## नगर-क्रान्ति

**नगरों के उदय के कारण**—(१) ताम्र और कांस्य का उत्पादन और उपकरण बनाने के लिये प्रयोग की विधि तथा हल, पहिया, बैलगाड़ी और पालदार नाव इत्यादि आविष्कार क्रान्तिकारी सम्भावनाओं से परिपूर्ण थे। परन्तु समाज का पुनर्गठन हुये बिना इनसे समुचित लाभ नहीं उठाया जा सकता था। इसका प्रमाण सीरिया, ईरान तथा मेडीट्रेनियन के तटवर्ती प्रदेश और बलूचिस्तान में रहने वाली जातियाँ हैं, जो ताम्र से ही नहीं वरन् उपर्युक्त अधिकांश आविष्कारों से परिचित होते हुये भी विशेष प्रगति नहीं कर सकीं। इसका प्रमुख कारण उनकी सामाजिक व्यवस्था का यथावत् बने रहना था। परन्तु नील, दजला और फरात तथा सिन्धु

की घाटियों में परिस्थितियाँ भिन्न थीं। जैसा हम देख चुके है, यह विशाल भूभाग होलोसीन युग के आरम्भ से ही अधिकाधिक शुष्क होता जा रहा था। अतः यहाँ मनुष्य ऐसे स्थानों पर बसना पसन्द करता था जहाँ उसे व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति और कृषि-कर्म के लिये पूरे वर्ष पर्याप्त जल मिल सके। यह सुविधा केवल उपर्युक्त नदियों की घाटियो में ही उपलब्ध हो सकती थी। इसलिये हम देखते हैं कि चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० में मिश्र, सुमेर तथा सिन्धु प्रदेश में निवास करने वाले मनुष्यों की संख्या बढने लगती है और बड़े-बड़े नगर अस्तित्व में आने लगते है। ये नगर आधुनिक काल के लंदन और न्यूयार्क नगरों की तुलना में बहुत छोटे थे, परन्तु ताम्र-प्रस्तरकालीन ग्रामों की तुलना में बहुत बड़े थे। अतः गॉर्डन चाइल्ड ने मानव-सभ्यता के इस अध्याय को 'नगर-क्रान्ति का युग' कहा है।

(२) मिश्र एक छोटा सा देश है और चारो ओर से रेगिस्तानों, पर्वतों और समुद्रों से घिरा है, तथापि नील नदी ने, सहस्रों वर्षों में बाढ के साथ लाई हुई मिट्टी से, इसके मध्य एक अत्यन्त उर्वर भूखण्ड निर्मित कर दिया है। यह भूखण्ड ३० फुट मोटी उर्वर मिट्टी की तहों से बना है और लगभग ७५० मील लम्बा तथा १० से ३० मील तक चौडा है। प्राचीन काल में यह प्रदेश इतना उपजाऊ था कि यहाँ एक ही वर्ष में तीन-तीन फसलें उगाना असम्भव नही था। सुमेर भौगोलिक दृष्टि से उस उर्वर-अर्धचन्द्र (Fertile Crescent) का दक्षिण-पूर्वी सिरा है, जो मेडीट्रेनियन के पूर्वी तट पर पेलेस्टाइन से प्रारम्भ होता है और सीरिया तथा असीरिया होता हुआ दक्षिण-पूर्व में फारस की खाड़ी के तट तक चला गया है (मानचित्र ३)। जिस प्रकार मिश्र नील नदी के द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना था, उसी प्रकार सुमेर दजला और फरात द्वारा लाई हुई मिट्टी से। यहाँ की भूमि की उर्वरता भी विश्व-विख्यात थी। यहाँ उपज साधारणत बीज की छियासी गुना होती थी। सौ गुनी उपज भी असम्भव नही थी। इसके अतिरिक्त यहाँ नदी झीलों और तालाबों मे मछली और भूमि पर खजूर के वृक्ष बहुतायत से मिलते थे। इस प्रकार मिश्र और सुमेर दोनों ही मनुष्य को आकर्षित करने वाले प्रदेश थे। परन्तु इनको आवास के योग्य बनाने के लिए कठोर श्रम करना आवश्यक था। इन दोनों ही प्रदेशों में वर्षा नाम मात्र को होती थी। यह ठीक है कि यहाँ प्रतिवर्ष बाढ आती थी, परन्तु बाढ उतरने के कुछ दिन बाद ही भूमि सूखकर कठोर हो जाती थी। अत. कृत्रिम सिंचाई किये बिना कृषि-कर्म में सफलता मिलना कठिन था। दूसरे, बाढ़ के जल को नियन्त्रित करना भी आवश्यक था। सुमेर में एक कठिनाई और थी। यह हाल ही में दजला और फरात के द्वारा लाई मिट्टी से बना होने के कारण दलदलों से भरा हुआ था। इन दलदलो में नरकुल के घने जंगल थे। दलदलों को सुखाने और नरकुल के जंगलों

को साफ किये बिना यहाँ की भूमि की उर्वरता निरर्थक थी। परन्तु जंगल साफ करना, बाढ़ के जल को बाँध बनाकर नियन्त्रित करना और नहरों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था करना, ये सब काम ताम्रकाल के छोटे-छोटे गाँवों के निवासी नहीं कर सकते थे। इसके लिये **मनुष्य को विशालतर मानव-समूहों में संगठित होना** आवश्यक था। एक बार बाँध और नहरें बना लेने के बाद उनकी रक्षा के लिये भी सदैव प्रयत्न करते रहने की आवश्यकता थी। इसलिये मिश्र और सुमेर में विशाल मानव-समूहों का एक स्थान पर स्थायी रूप में निवास करना आवश्यक हो गया। इससे मिलती-जुलती भौगोलिक परिस्थिति सिन्धु-प्रदेश में भी थी। इसलिये वहाँ भी, लगभग उसी समय, नगर-सभ्यता का प्रादुर्भाव हुआ।

**सुमेर में नगरों का आविर्भाव**—चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० सुमेर, मिश्र और सिन्धु प्रदेश में, ताम्रकालीन ग्रामों के स्थान पर कांस्यकालीन नगरों के उदय का युग है। इस संक्रान्ति-काल पर सबसे अच्छा प्रकाश सुमेरियन साक्ष्य से पड़ता है। इस प्रदेश के इरिडू, उर, इरेक, लागाश और लारसा इत्यादि नगरों में विकास की क्रमिक अवस्थाएँ लगभग एक सी हैं, इसलिये इरेक के साक्ष्य को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। इस नगर के प्राचीनतम अवशेष हलफियन और अलउबेद (al'Ubaid) युग के हैं। अलउबेद और ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ (लग० ३००० ई० पू०) के अवशेषों में ५० फुट का अन्तर है। इनको पुरातत्त्ववेत्ता उरुक (Uruk) और जम्देतनस्र (Jemdet Nasr), इन दो सांस्कृतिक युगों में विभाजित करते हैं। उरुक-युग में इरेक ग्राम के स्थान पर नगर बन जाता है। इस युग में बना इनन्ना देवी का मन्दिर १०० फुट लम्बा और २४५ फुट चौड़ा है तथा अनु देवता का जिगुरत ३५ फुट ऊँचा। इस युग का अन्त लगभग ३५०० ई० पू० में होता है। अगला युग जम्देतनस्र कहलाता है। इस युग में नगर का वैभव बढ़ जाता है, विदेशों से बहुमूल्य पाषाण अधिक मात्रा में मँगवाये जाने लगते हैं, काचन (Glaze) किये हुए उपकरण और मुद्राएँ तथा हल्के रथों का निर्माण होने लगता है तथा लिपि और अङ्कों का आविष्कार हो जाता है। लिपि का आविष्कार हो जाने के कारण साहित्यकारों और विद्वानों के लिये अपनी रचनाओं, व्यापारियों के लिये अपना हिसाब-किताब, पुजारियों के लिये मन्दिरों की आय-व्यय का विवरण और जादू-टोने तथा राजाओं के लिये अपनी उपलब्धियों को लिपिबद्ध करना सम्भव हो जाता है। इसलिये ३००० ई० पू० के लगभग सुमेर के प्रागैतिहासिक युग का अन्त होता है और ऐतिहासिक युग प्रारम्भ होता है।

## केन्द्रीय शक्ति का आविर्भाव

**केन्द्रीय शक्ति की आवश्यकता**—सुमेर तथा अन्य स्थानों पर नागरिक जीवन का मूलाधार समाज का सुसंगठित होना था। प्रत्येक नगर की सफलता इस बात

पर निर्भर रहती थी कि उसके नागरिक सामूहिक रूप से सार्वजनिक-निर्माणकार्य, जैसे नहर बनाना, बाँध बनाना और मन्दिर, जिगुरत तथा अन्य भवनों का निर्माण करना, आदि में भाग लेते है। इसके लिये यह आवश्यक था कि सार्वजनिक निर्माण कार्यों की योजना बनाई जाय; उस योजना को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक जन-शक्ति और साधन हों; श्रमिकों को वेतन के रूप में देने के लिए भण्डारो में अन्न और अन्य सामग्री हो तथा इन योजनाओं को व्यवस्थित रूप से कार्यान्वित करने वाली और नागरिकों को अनुशासन में रखने वाली कोई केन्द्रीय शक्ति हो।

**सुमेर के सत्ताधारी पुजारी और मिश्र के फराओ**—सुमेर में नगरों में व्यवस्था बनाये रखने का उत्तरदायित्व सिद्धान्ततः नगर के प्रधान मन्दिर के देवता और व्यवहार मे प्रधान पुजारी का था। यहाँ भूमि को देवता की व्यक्तिगत सम्पत्ति, मन्दिर को देवता का महल और प्रधान पुजारी को उसका प्रतिनिधि या वायसराय माना जाता था। प्रधान पुजारी देवता की 'आज्ञानुसार' और अन्य पुजारियों की सहायता से नगर की व्यवस्था करता था। प्रत्येक नागरिक देवता का दास होता था, इसलिये उसे नगर के सार्वजनिक-निर्माणकार्यों में अन्य नागरिकों के साथ सहयोग देना होता था। बड़ी संख्या मे दस्तकार, कृषक, कलाकार, सेवक और लिपिक पुजारी-वर्ग के अनुशासन में रहकर कार्य करते थे। पुजारी मिट्टी की पाटियों पर मन्दिरों के आय-व्यय का समुचित रूप से हिसाब-किताब रखते थे। सुमेर में यह व्यवस्था तब तक चलती रही जब तक देश का राजनीतिक एकीकरण न हो गया। सारगोन प्रथम के नेतृत्व में राजनीतिक एकीकरण हो जाने पर व्यवस्था में परिवर्तन होना आवश्यक था। मिश्र में इसके विपरीत ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ में ही राजनीतिक एकीकरण हो जाता है, इसलिये वहाँ समाज को व्यवस्थित करने और सार्वजनिक निर्माण कार्यों को व्यावहारिक रूप देने का उत्तरदायित्व राजा या फराओ पर पड़ा। सिन्धु-प्रदेश में भी किसी-न-किसी प्रकार की शक्तिशाली सरकार अवश्य अस्तित्व में आ गई होगी, परन्तु यहाँ की लिपि के न पढ़े जा सकने के कारण यह कहना कठिन है कि यहाँ की शासन-व्यवस्था का केन्द्र सामन्त थे अथवा पुजारी या राजा।

**विदेशी व्यापार**—सुमर, मिश्र और सिन्धु-प्रदेश, इन तीनों ही स्थानों पर कृषकों को अतिरिक्त-उत्पादन करना पड़ता था। इसका एक कारण था समाज में ऐसे वर्गो का बढ़ जाना जो प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन-कार्य मे भाग नही लेते थे। परन्तु इसका एक और भी कारण था। यह सभी प्रदेश ऐसे थे जहाँ आवश्यकता की सभी वस्तुएँ प्राप्त नहीं होती थी। सुमेर मे न तो ताम्र मिलता था और न पत्थर। यहाँ तक कि भवन-निर्माण के लिए लकड़ी भी बाहर से मँगानी पड़ती थी। मिश्र मे पत्थर मिल जाता था परन्तु ताम्र, लकड़ी, मेलेचाइट, बहुमूल्य पत्थरों तथा राल (Resin) इत्यादि का आयात करना पड़ता था। मोहनजोदाड़ो

और हड़प्पा के नागरिक देवदार और बहुमूल्य धातुएँ बाहर से मँगवाते थे। संक्षेप में, काँस्यकालीन नगर नव-पाषाणकाल और ताम्रकाल के गांवों की तरह आत्म-निर्भर नहीं थे। उन्हें अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये बाहर से आयात किये हुए माल पर निर्भर रहना पड़ता था और इसके लिए अतिरिक्त-खाद्यान्न का उत्पादन करना पड़ता था। यह तथ्य नागरिक-जीवन के विकास की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सुमेर में विदेशी व्यापार बहुत कुछ मन्दिरों के सदस्य व्यापारियों के हाथ में था। मिश्र में भी स्वतन्त्र व्यापारियों का एक वर्ग के रूप में अस्तित्व था। परन्तु सिन्धु प्रदेश में क्या अवस्था थी, यह कहना कठिन है। इतना निश्चित है कि उनके व्यापारिक सम्बन्ध कम-से-कम सुमेर तक अवश्य स्थापित हो गये थे। इन सब देशों के व्यापारी सौदागरों के माध्यम से विदेशों से माल का आयात और निर्यात करते थे। शीघ्र ही इन सौदागरों के काफ़िलों की सुविधा के लिये स्थान-स्थान पर

चित्र ५४ : सुमेरियन-रथ

व्यापार-केन्द्र स्थापित हो गये और विभिन्न देशों के शासकों को अपने देश के व्यापारियों के हितों और काफिलों की सुरक्षा के लिए सैनिकों की आवश्यकता पड़ने लगी। तीसरी सहस्राब्दी में हम बहुत से शासकों को अपने राज्य के व्यापारियों के हितों की रक्षा के लिये युद्ध करते देखते हैं। इसके अतिरिक्त उनके लिये यह भी आवश्यक हो गया कि वे व्यापारियों, सौदागरों, कृषकों और अन्य वर्गों के पारस्परिक झगड़े सुलझाने के लिए राजकर्मचारी रखें और न्यायालय (Law Courts) स्थापित करें। न्यायालयों के लिये कानूनों (Laws) की आवश्यकता पड़ी। पहले प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार न्याय करने का प्रयास किया गया। कालान्तर में विविध स्थानों के रिवाजों में समरूपता लाने के लिए विधि-संहिताओं (Law Codes) की रचना की गई।

मन्दिरों के पुजारियों और व्यापारियों को सम्पत्ति और व्यापार सम्बन्धी आँकड़े रखने पड़ते थे, इसलिये नगरों के उदय के साथ-साथ लिपि (Script) का जन्म भी हुआ। इसी प्रकार बहीखाता रखने की विद्या (Accountancy), अङ्क (Numerals), भार और नाप के निश्चित पैमाने (Standard Weights and Measurements) तथा ज्योमिति के नियम अस्तित्व में आये। लिपि के आविष्कार से प्रचलित लोक-कथाओं और विविध विद्याओं से सम्बद्ध ज्ञान को लिपिबद्ध करना सम्भव हो गया। इससे आगामी सन्ततियों के लाभार्थ साहित्य (Literature) की रचना और रक्षा हो सकी। इस बीच में कृषकों की सहायता के लिये नक्षत्रों का अध्ययन करके सौर-पंचाङ्ग (Solar Calendar) का आविष्कार किया जा चुका था। लिपि का आविष्कार हो जाने से खगोल-विद्या और ज्योतिष से सम्बन्धित ज्ञान की प्रगति में बहुत सहायता मिली।

व्यापारियों को अपनी सम्पत्ति पर अधिकार व्यक्त करने के लिये और माल की बाहर भेजी जाने वाली गांठों पर चिह्न अंकित करने के लिये मुद्राओं (Seals) की आवश्यकता पड़ती थी (चि० ५७)। इससे मुद्रा बनाने की कला (Lapidary) का विकास हुआ और मुद्रा बनाने वाले कलाकारों का स्वतन्त्र वर्ग के रूप में जन्म हुआ। इससे काचन विद्या (Glazing) के ज्ञाताओं और शीशा (Glass) बनाने वाले कलाकारों की माँग भी बढ़ी।

स्थायी जीवन व्यतीत करने के कारण मनुष्य के लिये यह सम्भव हो सका कि वह अपना जीवन सुखमय बनाने की ओर ध्यान दे। सबसे पहले उसने अपने भवनों की ओर ध्यान दिया। वह नव-पाषाणकाल और ताम्रकाल के प्रारम्भ में मेसोपोटामिया और मिश्र में नरकुल और मिट्टी की झोपड़ियाँ बनाता था (चित्र ४०, पृ० ७९), परन्तु
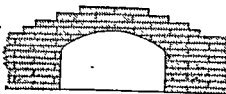
चित्र ५५ : सुमेर से प्राप्त एक मेहराब

कांस्यकाल में अर्थात ३००० ई० पू० के कुछ पहले उसने ईंटों का आविष्कार किया। कच्ची ईंटें मिट्टी को साँचे में ढालकर और फिर धूप में सुखाकर बनाई जाती थीं (चित्र ५२ पृ०, ९९)। सिन्धु-प्रदेश में पक्की ईंटों का बहुतायत से प्रयोग होता था। ईंटों के आविष्कार से झोपड़ियों के स्थान पर मकान बनाना सम्भव हो गया। जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी से विभिन्न प्रकार के बर्तन बना सकता है, उसी प्रकार कारीगर ईंटों को

भिन्न-भिन्न शैलियो में रखकर नये-नये ढंग के मकान बना सकता है। इतना ही नही इनकी सहायता से मकानों का आकार भी विशालतर हो सकता है। ईंटो की प्रारम्भिक इमारतें झोपड़ियों के अनुरूप होती थी, परन्तु सुमेर और सिन्धु-प्रदेश में ३००० ई० पू० के लगभग मेहराब (Arch) का आविष्कार हो चुका था (चित्र ५५)। सिन्धु-प्रदेश मे तीसरी सहस्राब्दी मे दो मंजिले मकान भी बनने लगे थे।

**ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ में सभ्य समाज**—उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि काँस्यकालीन नगर-क्रान्ति के कारण मनुष्य का जीवन आमूल परिवर्तित हो गया। जिस समय, तीसरी सहस्राब्दी की आरम्भिक शताब्दियों मे, ऐतिहासिक युग का सूत्रपात होता है, सभ्य मनुष्य स्वय को नदियों की घाटियों मे अवस्थित नगरो में निवास करता पाता है। ये नगर विस्तार और जनसंख्या, दोनों दृष्टि से ताम्र-कालीन ग्रामो की तुलना में बहुत बड़े थे। मोहनजोदड़ों का क्षेत्रफल एक वर्गमील
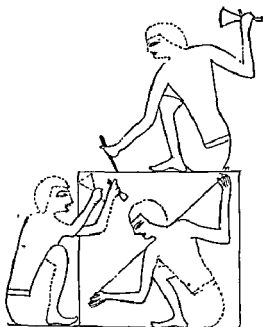
चित्र ५६ : पिरेमिडयुगीन मिश्र मे पत्थर तराशने का एक दृश्य

से अधिक था। सुमेर के उर नगर मे कम-से-कम १५० एकड़ में भवन बने हुये थे, जिनमें लगभग २४,००० व्यक्ति रहते होंगे। यहाँ की 'राज-समाधि' में ७०० शव प्राप्त हुये हैं, जो निश्चित रूप से काफी बड़ी सख्या है। लागाश सुमेर का अपेक्षाकृत छोटा नगर था परन्तु इसकी आबादी भी १६,००० से कम नही थी।

ये नगर कच्ची और पक्की ईंटों तथा प्रस्तर-खण्डों (चित्र ५६) से बने भवनों से सुसज्जित थे। सिन्धु-प्रदेश के नगरों को ऐसी योजना के अनुसार बनाया गया था कि सफाई और जल की समुचित व्यवस्था रखने में सुविधा हो। यहाँ सफाई और जल की व्यवस्था इतनी अच्छी थी, जितनी मध्यकालीन यूरोप के अधिकांश नगरों में नही मिलती। बहुत से भारतीय नगरों में आजकल भी ऐसी व्यवस्था नही है। इन नगरों में कृषक ऐसे हलों का तथा कुम्हार ऐसे चाकों का प्रयोग करते थे जिनमें औद्योगिक-क्रान्ति होने तक कोई सुधार नही हो सका। इन नगरों के आर्थिक जीवन का आधार विदेशी व्यापार था। यहाँ के सौदागरों के काफिले पशुओं, बैलगाड़ियों और नावों पर माल लादकर दूरस्थ देशों की यात्रा करते थे। माल से भरी उनकी नावें, नील, दजला और फरात तथा सिन्धु नदियों में देखी जा सकती थी। इन नगरों के बाजारों की देश-विदेश से आये व्यापारी और सौदागर उसी प्रकार शोभा बढ़ाते थे, जिस प्रकार परवर्ती युगों में अलेक्ज़ेण्ड्रिया, रोम और बग़दाद नगरों में। व्यापारी अपने आय-व्यय के आँकड़े रखने के लिये अङ्कों
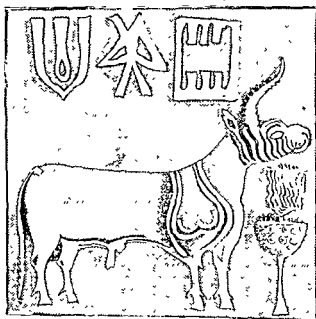
चित्र ५७

और लिपि का प्रयोग करते थे और अपने माल की गाँठों पर मिट्टी की पाटी लगाकर अपनी मुद्रा अङ्कित कर देते थे। इन नगरों के शासक भी प्राचीनकाल के अन्य ऐतिहासिक शासकों के समान मन्दिर, नहरें, राजमहल और समाधियाँ इत्यादि बनवाने तथा युद्धों द्वारा अपने राज्य का विस्तार करने में गर्व का अनुभव करते

थे और अपनी उपलब्धियों को मिट्टी की पाटियों पर उत्कीर्ण कराते थे। इस युग के, उत्खनन से प्राप्त होने वाले, महत्वपूर्ण अवशेष कृषि और आखेट से सम्बन्धित उपकरण नहीं वरन् राज-समाधियाँ, भव्य राज-प्रासाद, मन्दिर, जिगुरत, मूर्तियाँ, फर्नीचर, मुद्राएँ और अभिलेख इत्यादि हैं।

संक्षेप में, वे सब बातें जो सभ्य नागरिक जीवन के साथ जुड़ी हैं और वे सब आविष्कार जो मनुष्य के जीवन को सुखमय और सुविधापूर्ण बनाते हैं ताम्र और कांस्यकाल में, तीसरी सहस्राब्दी की प्रारम्भिक शताब्दियों तक, अस्तित्व में आ चुके थे। आगामी दो सहस्र वर्षों में मनुष्य इन सुख सुविधाओं को (वर्णमाला और लोहे का उत्पादन तथा उपकरण बनाने के लिये प्रयोग की विधि को छोड़कर) और अधिक नहीं बढ़ा पाया। इसीलिये कांस्यकालीन नगर-क्रान्ति के युग को 'सभ्यता के जन्म' का युग कहा जाता है।

हमने ऊपर सभ्यता के जन्म का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसमें सिन्धु-प्रदेश, मिश्र और बैबिलोनिया के नागरिक जीवन से सम्बन्धित सभी प्रमुख तथ्य आ जाते हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन तीनों स्थानों की सभ्यता एक सी थी। विस्तरशः अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि इन तीनों प्रदेशों की सभ्यता में मूलभूत अन्तर था। सुमेर और मिश्र की आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था पूर्णतः भिन्न थी। हो सकता है सिन्धु-प्रदेश में कोई तीसरे प्रकार की व्यवस्था रही हो। सुमेरियन समाज बहुत से स्वतन्त्र नगरों में विभाजित था, जिनके सामूहिक जीवन का केन्द्र नगर-मन्दिर होता था। मिश्र में प्राचीनतम युग में ही राजनीतिक एकीकरण हो जाता है और सत्ता पुजारियों के स्थान पर फराओ अथवा राजा के हाथ में केन्द्रित हो जाती है। सिन्धु-प्रदेश की राजनीतिक व्यवस्था कैसी थी, यह ज्ञात नहीं है, परन्तु यह स्पष्ट है कि यहाँ की व्यवस्था सुमेर और मिश्र की व्यवस्था से भिन्न रही होगी। इसी प्रकार की भिन्नता जीवन के अन्य क्षेत्रों में मिलती है। मिश्र के प्राचीनतम भवन राज-समाधियाँ हैं और सुमेर के मन्दिर। तीनों स्थानों पर लिपि का प्रयोग होता है पर किन्हीं दो स्थानों की लिपि एक सी नहीं है। मिश्र में लिपि का प्रयोग प्रारम्भ में मुद्राओं और स्मारकों पर किया गया

युग है। लाखों वर्ष तक प्रयास करने के बाद मनुष्य बर्बर जीवन का परित्याग कर सभ्य समाज को जन्म देने में सफल होता है; परन्तु स्वयं को प्रादेशिक वातावरण के अनुकूल बनाने के प्रयत्न में उसके 'सभ्य समाज' का रूप एक सा नहीं रह पाता। वस्तुतः ऐतिहासिक युग में मानव-इतिहास की विषय-वस्तु (Theme) प्रादेशिक सांस्कृतिक भेदों को मिटाकर यथार्थ एकता स्थापित करता रहा है।

थे और अपनी उपलब्धियों को मिट्टी की पाटियो पर उत्कीर्ण कराते थे। इस युग के, उत्खनन से प्राप्त होने वाले, महत्त्वपूर्ण अवशेष कृषि और आखेट से सम्बन्धित उपकरण नही वरन् राज-समाधियाँ, भव्य राज-प्रासाद, मन्दिर, जिगुरत, मूर्तियाँ, फर्नीचर, मुद्राएँ और अभिलेख इत्यादि हैं।

संक्षेप में, वे सब बातें जो सभ्य नागरिक जीवन के साथ जुडी हैं और वे सब आविष्कार जो मनुष्य के जीवन को सुखमय और सुविधापूर्ण बनाते हैं ताम्र और काँस्यकाल मे, तीसरी सहस्राब्दी की प्रारम्भिक शताब्दियो तक, अस्तित्व मे आ चुके थे। आगामी दो सहस्र वर्षों मे मनुष्य इन सुख सुविधाओ को (वर्णमाला और लोहे का उत्पादन तथा उपकरण बनाने के लिये प्रयोग की विधि को छोड़कर) और अधिक नही बढ़ा पाया। इसीलिये काँस्यकालीन नगर-क्रान्ति के युग को 'सभ्यता के जन्म' का युग कहा जाता है।

हमने ऊपर सभ्यता के जन्म का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसमें सिन्धु-प्रदेश, मिश्र और बैबिलोनिया के नागरिक जीवन से सम्बन्धित सभी प्रमुख तथ्य आ जाते हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि इन तीनों स्थानो की सभ्यता एक सी थी। विस्तरश: अध्ययन करने पर ज्ञात होगा कि इन तीनो प्रदेशो की सभ्यता मे मूलभूत अन्तर था। सुमेर और मिश्र की आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था पूर्णतः भिन्न थी। हो सकता है सिन्धु-प्रदेश मे कोई तीसरे प्रकार की व्यवस्था रही हो। सुमेरियन समाज बहुत से स्वतन्त्र नगरो मे विभाजित था, जिनके सामूहिक जीवन का केन्द्र नगर-मन्दिर होता था। मिश्र में प्राचीनतम युग मे ही राजनीतिक एकीकरण हो जाता है और सत्ता पुजारियो के स्थान पर फराओ अथवा राजा के हाथ मे केन्द्रित हो जाती है। सिन्धु-प्रदेश की राजनीतिक व्यवस्था कैसी थी, यह ज्ञात नही है, परन्तु यह स्पष्ट है कि वहाँ की व्यवस्था सुमेर और मिश्र की व्यवस्था से भिन्न रही होगी। इसी प्रकार की भिन्नता जीवन के अन्य क्षेत्रों में मिलती है। मिश्र के प्राचीनतम भवन राज-समाधियाँ हैं और सुमेर के मन्दिर। तीनों स्थानों पर लिपि का प्रयोग होता है पर किन्ही दो स्थानो की लिपि एक सी नही है। मिश्र मे लिपि का प्रयोग प्रारम्भ में मुद्राओं और स्मारको पर किया गया जबकि सुमेर मे मिट्टी की पाटियो पर मन्दिरो की आय और व्यय का विवरण लिखने मे। काँस्य का प्रयोग इन तीनों देशो में किया जाता है परन्तु ठठेरे जो उपकरण बनाते हैं वे विभिन्न प्रकार के हैं। नगरों की योजना, मुद्राओ पर मिलने वाले चित्र, राज-समाधियाँ, धर्म, वेष-भूषा, रहन-सहन तथा ज्ञान-विज्ञान, इन सभी बातों मे सिन्धु-प्रदेश की सभ्यता सुमेरियन-सभ्यता से और सुमेरियन-सभ्यता मिश्र की सभ्यता से भिन्न हैं। अतः कहा जा सकता है कि यह युग केवल 'सभ्यता के जन्म' का युग ही नही वरन् 'विशिष्ट सभ्यताओं के जन्म' का

युग है। लाखों वर्ष तक प्रयास करने के बाद मनुष्य बर्बर जीवन का परित्याग कर सभ्य समाज को जन्म देने में सफल होता है; परन्तु स्वयं को प्रादेशिक वातावरण के अनुकूल बनाने के प्रयत्न में उसके 'सभ्य समाज' का रूप एक सा नहीं रह पाता। वस्तुतः ऐतिहासिक युग में मानव-इतिहास की विषय-वस्तु (Theme) प्रादेशिक सांस्कृतिक भेदों को मिटाकर यथार्थ एकता स्थापित करता रहा है।

## पाषाणकालीन संस्कृतियाँ

निम्नलिखित सूची में पूर्व-पाषाणकाल और मध्य-पाषाणकाल की उन संस्कृतियों के नाम दिये गये है जिनका उल्लेख इस पुस्तक मे हुआ है। प्रत्येक संस्कृति के नाम के आगे उसकी तिथि दी गई है(प्रा० पू० पा०=प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल; म० पू० पा०=मध्य-पूर्व-पाषाणकाल; प० पू० पा०=परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल तथा म० पा०=मध्य-पाषाणकाल)। तिथि के आगे उस स्थान का निर्देश है जिसके नाम पर वह सस्कृति प्रख्यात है।

अस्तूरियन (म० पा०): अस्तूरिया, उत्तरी स्पेन।
अचूलियन (प्रा० पू० पा०). सेन्ट अचूल, आमीन्स (सोम), उत्तरी फ्रांस।
अनयाथियन (प्रा० पू० पा०—प० पू० पा०): अन-या-था=उत्तरी बर्मा का निवासी।
अतेरियन (म० पू० पा०—प० पू० पा०): बीर-अल-अतेर, ट्यूनिशिया।
अजीलियन (म० पा०): मास दाजील, दक्षिणी फ्रास।
ऑरिन्येशियन (प० पू० पा०): ऑरिन्याक्, तूलूस, दक्षिणी फ्रांस, से ४० मील दक्षिण-पश्चिम की ओर एक गुफा।
एब्वेविलियन (प्रा० पू० पा०): एब्वेविले (सोम), उत्तरी फ्रास।
ओल्डोवान (प्रा० पू० पा०): ओल्डोवे गॉर्ज, उत्तरी टंगान्यिका।
क्लेक्टोनियन (प्रा० पू० पा०): क्लेक्टोन, एसेक्स।
काफुआन (प्रा० पू० पा): काफू नदी, यूगांडा।
किचेनमिडेन (म० पा०): डेन्मार्क मे प्रागैतिहासिक अस्थि इत्यादि के अवशेषों से निर्मित ढेर के लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द।
केप्सियन (प० पू० पा०—म० पा०): लैटिन Capsa=Gafsa ट्यूनिशिया।
ग्रवेशियन (प० पू० पा०): ला ग्रावेत, दोर्दोन की घाटी, दक्षिण-पश्चिमी फ्रास।
चैलियन (प्रा० पू० पा०): चैले-सर-मार्न, पेरिस के निकट।
चोउ-कोउ-तियेनियन (प्रा० पू० पा०): चोउ-कोउ-तिएन गुफा, पेकिंग से ४० मील दक्षिण-पश्चिम की ओर।
तार्देनुआजियन (म० पा०): ला फेयर-ऑ-तार्देनुआ, उत्तर-पश्चिमी फ्रास।
पतजितनियन (प्रा० पू० पा०): पतजितन, दक्षिणी-मध्य जावा।
पेरिगोरडियन (प० पू० पा०): पेरिगॉर्ड प्रदेश दक्षिण-पश्चिमी फ्रास।
मूस्टेरियन (म० पू० पा०): ल मूस्टीर, दोर्दोन, दक्षिण-पश्चिमी फ्रास।
मंग्लेमोजियन (म० पा०): मैंग्लेमोस, जीलैण्ड, डेनमार्क।

मैग्डेलेनियन (प० पू० पा०) : ला मादलें, दोर्दोन, दक्षिण-पश्चिमी फ्रांस।
लेवालुआजियन (प० पू० पा०) : लेवालुआ-पेरेट, पेरिस।
शेतलपेरोनियन (प० पू० पा०) : शेतलपेरोन, मध्य फ्रांस।
स्टेलेनबोश (प्रा० पू० पा०) : स्टेलेनबोश, केपटाउन के समीप, दक्षिण अफ्रीका।
सोहन (प्रा० पू० पा०) : सोहन नदी, उत्तरी पाकिस्तान।
सोल्यूट्रियन (प० पू० पा०) : सोल्यूट्र, दक्षिण-पूर्वी फ्रांस।

# शब्द-सूची

| | |
|---|---|
| Age of Carbon | कार्बन कल्प |
| Age of Fishes | मत्स्य कल्प |
| Alignment | एलायन्मेंट |
| Amphibia | उभयचर |
| Amulet | तावीज़ |
| Anthropology | नृवंश शास्त्र, नृतत्त्व शास्त्र |
| Ape | एप |
| Arch | मेहराब |
| Archaeozoic Age | प्रजीव युग |
| Artifact | औजार, उपकरण |
| Australopithecus Africanus | ऑस्ट्रेलोपिथेकस अफ्रीकेनस्, अफ्रीकी मानव |
| Awls | सूआ, टेकुला |
| Axe | कुल्हाड़ी, छुरा |
| Azoic Age | अजीव-युग |
| Barbarian | बर्बर |
| Barrow | बेरो |
| Blade | ब्लेड |
| Boskop Man | बोस्कोप-मानव |
| Bronze Age | कांस्य काल |
| Burin | रुखानी, नक्काशी यन्त्र |
| Cainozoic Age | नवजीव युग |
| Calender | पंचाङ्ग |
| Carpentry | काष्ठकला |
| Cave | गुफा, गुहा |
| Cell | कोष |
| Chalcolithic | ताम्र-प्रस्तर युग |
| Chancelade Man | शांसलाद मानव |
| Chopper | चॉपर |

| | |
|---|---|
| Clay | मृत्तिका, मिट्टी |
| Code | संहिता |
| Combe-Capelle | कोम्ब कोपेल |
| Conglomerate | कांग्लोमेरेट |
| Copper Age | ताम्रकाल |
| Core | कोर, आन्तरिक |
| Corn King | अन्नदेव |
| Cosmic Time | सृष्टि समय |
| Coup-de-poing | मुष्टि छुरा |
| Cro-Magnon | क्रोमान्यों |
| Cromlech | क्रोमलेच |
| Culture | संस्कृति |
| Deposition | निक्षेप |
| Dolmen | डॉलमेन |
| Domestication of Animals | पशुपालन |
| Eocene Period | आदि-नूतन-युग |
| Eolith | इयोलिथ |
| Eolithic Age | इयोलिथिक-युग, पाषाणकाल का उष: काल |
| Eonthropus | उष: मानव |
| Equid | अश्वसम |
| Erosion | आवरण-क्षय |
| Excavation | उत्खनन |
| Exploration | अनुसंधान, अन्वेषण |
| Fertilo Crescent | उर्वर-अर्धचन्द्र |
| Fertility Drama | कृषि-नाटक |
| Flake | फ्लेक, फलक |
| Fontochevade Man | फोंतेशेवाद मानव |
| Fossil | प्रस्तरित-अवशेष |
| Genetic | आनुवांशिक |
| Geological Timo | भूगर्भीय समय |
| Glacial Age | हिमयुग |
| Glacier | हिमनदी |

| | |
|---|---|
| Glazing | काचन विद्या |
| Granary | अन्नागार |
| Gravel | बजरी |
| Graver | रुखानी |
| Grimaldi Man | ग्रिमाल्डी-मानव |
| Group | समूह |
| Hand axe | मुष्टि छुरा |
| Harpoon | हार्पून |
| Heidelberg Man | हीडलबर्ग-मानव |
| Hoe | कुदाल |
| Holocene/Recent | सर्वनूतन युग |
| Hominid | मानव सम |
| Homo | मानव |
| Homo-sapiens/True Man | पूर्णमानव, मेधावी-मानव |
| Ice Age | हिमयुग |
| Implememts | हथियार |
| Industry | उद्योग |
| Interglacial | अन्तर्हिमयुग |
| Interpluvial | अन्तर्वर्षायुग |
| Java Man | जावा मानव |
| Lake Dwellings | जलगृह |
| Magic | जादू |
| Mammals | स्तनपायी प्राणी |
| Mammoth | मैमथ, गजराज |
| Mana | 'मन' |
| Matriarchal | मातृसत्तात्मक |
| Megalith | वृहत्पाषाण |
| Menhir | मेनहिर |
| Mesolithic/Middle Stone Age | मध्य-पाषाणकाल |
| Mesozoic Age | मध्य-जीवयुग |
| Metazoa | बहुकोषी जीव |
| Microburin | लघु-रुखानी, माइक्रोबरीन |
| Microlith | लघुपाषाणोपकरण |

| | |
|---|---|
| Miocene | मध्य-नूतन-युग |
| Missing Link | लुप्त कड़ी |
| Monolith | मेनहिर |
| Mutation | तात्त्विक परिवर्तन |
| Natural Selection | प्राकृतिक निर्वाचन |
| Neanderthal | नियण्डर्थल-मानव |
| Neanderthaloid | नियण्डर्थलसम |
| Neolithic/New Stone Age | नव-पाषाणकाल |
| Nomad | यायावर, खानाबदोश |
| Oligocene | आदि नूतन-युग |
| Palaeolithic Age | पूर्व-पाषाणकाल |
| ——Lower | प्रारम्भिक-पूर्व-पाषाणकाल |
| ——Middle | मध्य-पूर्व-पाषाणकाल |
| ——Upper | परवर्ती-पूर्व-पाषाणकाल |
| Palaeozoic | प्राचीन-जीव-युग |
| Patriarchal | पितृसत्तात्मक |
| Peking Man | पेकिंग-मानव |
| Pithecanthropus Erectus | पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस |
| Pithecanthropus Pekinensis | पेकिंग-मानव |
| Pleistocene Period | प्लीस्टोसीन, प्राति-नूतन-युग |
| Pliocene | प्लीयोसीन, अति-नूतन-युग |
| Pluvial Age | वर्षायुग |
| Post Glacial Age | हिमोत्तर युग |
| Potter's Wheel | कुम्हार का चाक |
| Pottery | मृद्भाण्ड |
| Pre-dynastic | प्राग्वंशीय |
| Prehistoric | प्रागैतिहासिक |
| Priest | पुरोहित, पुजारी |
| Primary Period | प्राथमिक काल |
| Primate | नर-वानर परिवार |
| Primitive | आदिम |
| Proterozoic | प्रारम्भिक-जीव-युग |
| Proto-historic | पुरा-ऐतिहासिक |

| | |
|---|---|
| Protozoa | एककोषी जीव |
| Quaternary Period | चतुर्थक काल |
| Reed | रीड, नरकुल |
| Reptile | सरीसृप |
| Ring Method | छल्लाविधि |
| Rock Shelter | गुहा-आश्रय |
| Scraper | खुर्चन-यन्त्र |
| Seal | मुद्रा, मुहर |
| Secondary Period | द्वितीयक युग |
| Sediment | चूर्ण |
| Sedimentary Rock | स्तरीय-चट्टान |
| Sickle | हंसिया |
| Side Scraper | पार्श्व-खुर्चन-यन्त्र |
| Sinanthropus | चीनी-मानव |
| Site | स्थल |
| Solar Radiation | सौर्यिक विकिरण |
| Solar System | सौर-मण्डल |
| Solo Man | सोलो मानव |
| Somatic | दैहिक |
| Steinheim Man | स्टीनहीम-मानव |
| Stone Age | पाषाणकाल |
| Struggle for Existence | जीवन-संघर्ष |
| Suggestion Picture | संकेत-चित्र |
| Survival of the Fittest | योग्यतम का अनुजीवन |
| Swanscombe Man | स्वैनकोम्बे-मानव |
| Sympathetic Magic | सादृश्यमूलक जादू |
| Technical Skill | विज्ञान-कौशल |
| Tell | टीला |
| Tertiary Period | तृतीयक युग |
| Tomb | समाधि |
| Tool | उपकरण |
| Totem | टॉटेम |
| Tumlus | ट्मलस् |
| Vertebrate | पृष्ठवंशी |
| Wadjak Man | वादजक-मानव |

## पठनीय सामग्री

Burkitt, M. C, *The Old Stone Age* (1949).
Burkitt, M. C., *Prehistory* (1925).
Burkitt, M. C., *Our Early Ancestors* (1929).
Clark, J. Desmond, *The Prehistory of Southern Africa* (1959).
Clark, J. G. D., *From Savagery to Civilization* (1946).
Coon, Carlton, S., *The Story of Man* (1955).
Cole, S., *The Prehistory of East Africa* (1954).
Childe, V. G., *What Happened in History* (1957).
Childe, V. G., *Man Makes Himself* (1955).
Childe, V. G., *The Dawn of European Civilization* (1957).
Childe, V. G., *The Prehistory of European Society* (1958).
Childe, V. G., *New Light on the Most Ancient East* (1952).
Childe, V. G., *Bronze Age* (1930).
Fairservis, W. A., *The Origins of Oriental Civilization* (1959).
Frankfort, H., *The Birth of Civilization in the Near East* (1955).
Ghirshman, R., *Iran* (1954).
Hoebel, E. Adamson, *The Man in the Primitive World.*
James, E. O., *Prehistoric Religion.*
Kuhn, H., *On the Track of Prehistoric Man* (1958).
Leakey, L. S. B., *Adam's Ancestors* (1953).
Mcburney, C. B. M., *The Stone Age of Northern Africa* (1960).
Mikhail, N., *The Origin of Man* (1959).
Montagu, A., *Man : His First Million Years* (1959).
Montagu, A., *An Introduction to Physical Anthropology* (1951).
Marjorie and Quennell, *Everyday Life in Prehistoric Times* (1959).
Oakley, P. Kenneth, *Man the Tool Maker* (1958).
Piggott, S., *Prehistoric India* (1950).
Singer, Holmyard and Hall, *A History of Technology*, Vol. I (relevant Chapters) (1956).
Wheeler, M., *Early India and Pakistan* (1959).
Wells, H. G., *The Outline of History* (1956).
Zeuner, F. E., *Dating the Past* (1958).

# अनुक्रमणिका

फ



ब

लेखक की दूसरी कृति

## विश्व की प्राचीन सभ्यताएँ

अनेक चित्रों तथा नवीनतम सामग्रियों से पूर्ण।

मूल्य १२ ५०